ISSN : 2321-3922
जुलाई – 2018
BIHHIN05394
वर्ष – 4 अंक–12

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर–2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–13

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–13
जुलाई–सितम्बर – 2018

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर – 2018 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सुसंभाव्य

जुलाई–सितम्बर 2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
आलेख	साहित्य, साहित्यकार और समाज	डॉ.गिरिजाशंकर मोदी	6
लघुकथा	सैम्पल पुस्तकें	उर्मिला प्रसाद	8
आलेख	सामाजिक चेतना और संचार	डॉ. मज़ीद मियां	9
ग़ज़लें	आपके जैसा.../जब हुआ .../गुमनमान रिश्ते....	अशोक मिज़ाज/ उत्कर्ष अग्निहोत्री/अमरेश सिंह भदोरिया	11
आलेख	भूमंडलीकरण और मीडिया	रणजीत कुमार सिन्हा	12
कविताएँ	याद है मुझे/बदलता जीवन	शशिकला झा/रवि शंकर सिंह	13
आलेख	सरदार अजीत सिंह	डॉ. ऊषा निगम	14
शोधआलेख	सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश...	सुभाष चन्द्र झा	16
लघुकथा	सच्चा रिश्ता/कविता–शॉर्टकट	संजय वर्मा 'दृष्टि'/अंजनी श्रीवास्तव	21
समीक्षा	स्त्री शोषण की व्यथा–कथा	डॉ0 सीमा शर्मा	22
कविता	आदमी का लक्ष्य	डॉ. केवलकृष्ण पाठक	23
वार्ता	नवगीत साहित्य का यथार्थ	डॉ. जयशंकर शुक्ल	24
कविताएँ	सावनी बयार/आस/बेटी/अनजान	मीनाक्षी छाजेड़/महेश शर्मा /महेन्द्र देवांगन 'माटी'/डॉ. सीमा देवी	27
समीक्षा	रघुवीर सहाय की पत्रकारिता और दिनमान	डॉ. आर.के. नीरद	28
ग़ज़लें	वर्तमान का गीत/परों के बराबर कदम हैं अभी	प्रो. शरद नारायण खरे/केशव शरण	30
लघुशोध	मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवनचरित्र एवं आज का युग	डॉ0 छोटेलाल गुप्ता	31
ग़ज़ल	ऐसी खबरों से बेखबर रहता	कैलाश झा किंकर	34
समीक्षा	आलोच्य उपन्यास:गंगा कछार	डॉ. गायत्री देवी	35
कविता	कौन था वह	पारस कुंज	36
कहानी	सोनचिरैया	डॉ नीरजा हेमेन्द्र	37
लघुकथा	प्रतिद्वंद्वी/विरोध	सीताराम गुप्ता	40
कहानी	अंगूठी ताम्बे की	डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव	41
कविता	बाल संसार	निहार रंजन	42
कहानी	दंश	संगीता सिंह 'भावना'	43
कविता	गौरैया/मौसम में बहार आई	विन्ध्य प्रकाश मिश्र/प्रिया देवांगन 'प्रियू'	44
आलेख	गहन संवेदना के वाहक: व्यंग्य	डॉ. अवधेश चन्सौलिया	45
कविता	चिड़ियों का जीवन	ज्योति सिन्हा	46
कहानी	राज अपना है अब	नसीम साकेती	47
कविता	मुझको ढूँढ रहा है	प्रियंवदा	48

अब क्या होगा

जब तुम छोटी थीं
हम सोते हुए देखते थे तुम्हें
साँसों की लहरें
भरती थीं तुम्हारी छाती को
कभी–कभी हम छिप जाते थे
तुम्हारी बच्ची–दीवार की, तुम्हारी
बच्ची आवश्यकताओं के
नम्र पालने की ओट में
मुझे कितना अच्छा लगता था
अपनी देह और दुनिया के बीच
तुम्हें उठाकर चलना

अब तुम पेंसिल छीलने लगी हो
कदम रखने लगी हो
टिफ़िन बॉक्सों और छोटे डेस्कों के जंगल में
जिन लोगों को मैंने कभी देखा तक नहीं
वे नाम से पुकारते हैं तुम्हें
और तुम हाथ हिला देती हो

एक कमी–सी लगने लगी मुझे
एक सिकुड़न
जैसे–जैसे तुम्हारा गुलाबों भरा मैदान
फैल रहा है...फैलता जा रहा है

अब समझ पा रही हूँ इतिहास को
अब समझ पा रही हूँ अपनी माँ की
प्राचीन आँखें।

–नाओमी शिहाब नाए (फिलिस्तीन)
अनुवाद: रीनू तलवाड़

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

समाज के लिए हर नागरिक को कुछ करने की जिम्मेदारी होती है और यही जिम्मेदारी व्यवस्था का स्थायी रूप लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को सुनियोजित, विशिष्ट और प्रतिष्ठित बनाती है, जिसका संबंध आधारभूत मूल्यों पर टिका होता है। इसे इनकार भी नहीं किया जा सकता कि सर्जक की दृष्टि कुछ अधिक देख पाने में, समय से पहले उसकी गहराई तक पहुँचने में, स्पष्ट गति के प्रतिकूल भी देखने या अनुभूति में सूक्ष्म होती है। यदि समाज को बदलने में साहित्य का योग है, तो उसमें साहित्यकार की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। ऐसे में साहित्यकार रचना–दृष्टि को रंगीन चश्मा पहनाकर साहित्य एकांगी और असमर्थ न होने दें। प्रगति हेतु संस्कृति अथवा सांस्कृतिक मूल्यों को आर्थिक विकास हेतु निरीविलासिता से बचाये रखने के लिए साहित्यकार को सोचना होगा कि कौन–सा सामाजिक परिवर्तन सही और वांछनीय है। यह सत्य है कि कल्पना सर्जन का आधार है। कल्पना और सर्जक साथ मिलकर साहित्य और समाज को, समाज के इतिहास को, उसकी वर्तमान स्थिति को तथा उसकी आकांक्षा को अभिव्यक्ति देते हैं।

संस्कृति, समाज, साहित्य और कोई अन्य अवधारणाओं में परस्परता और अन्योन्याश्रय का गहरा संबंध है। यदि हमारी दृष्टि कुछ ही पहलुओं पर केन्द्रित हो जाती है, तो परिदृश्य ही बदल जाता है और इसी पारस्परिकता पर उसका सर्जक क्रियाशील होता है। उसकी संवेदना मूल्यदृष्टि के साथ जुड़ जाती है, उसकी अनिवार्यता संस्कृति और समाज के बदलाव से जुड़ जाती है। इसलिए सर्जक, साहित्यकार, कवि को हम कालजीत, अनागतदर्शी, त्रिकालदर्शी, मनीषी, परिभू आदि कहते हैं। यह बात अलग है कि आज जिन कृतियों को हम साहित्य के नाम से पढ़ते, उनमें इने–गिने ही उन कोटि में आती है, जिनमें हमारा संपूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। साहित्य जीवन के मीठे क्षणों का संग्रहमात्र नहीं है। यह हमारे समाज का जीवन है। उसके उत्थान–पतन का साधन है। साहित्यकार तो विश्व का आनंददाता है। उन्हें मिठास को भी मर्यादा के साथ प्रस्तुत करना होता है। इसके रुदन में, हास में, पीड़ा में भी विश्व को आनंद मिलता है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि परिवर्तन न हो, नवीनता न हो, रचना की स्वच्छंदता न हो। पर ऐसा भी न हो कि आत्ममुग्धता या मूल्यहीनता के हाथ में साहित्य खेले, नहीं तो विश्व को विचारदान देनेवाले साहित्य की उपादेयता को हमें दूरबीन लेकर खोजना पड़ेगा।

यह सच है कि इस भौतिकवाद या विकासवाद युग में समाज का तो विकास हुआ, पर साहित्य में विकास प्रक्रिया उस तरह सम्पन्न नहीं हो रही है, जिस प्रकार आज पूँजीवाद सभ्यता को अधिक प्रगतिशील कहा जा सकता है या इसके मुकाबले समाजवादी सभ्यता को कहा जा सकता है। इस स्थिति में पुराना आर्थिक ढाँचा बदलने पर संस्कृति का ताना–बाना भी पूरी तरह बदल जाता है। भौतिक विज्ञान का विकास होता है। मनुष्य की चेतना आर्थिक संबंधों से प्रभावित होती है, किन्तु समाजवादी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ पाती, वह उसे आत्मसात् करके आगे बढ़ती है। 19वीं और 20वीं सदी के कवि पुराने कवियों, लेखकों को नहीं छोड़ पा रहे हैं और कहीं उनके आस–पास पहुँच जाते हैं, तो अपने को धन्य भी मानते हैं। ये कवि उनका अनुकरण नहीं करते, बल्कि सीखते हैं और नई परंपरा को जन्म देने का प्रयास भी करते हैं। फलस्वरूप कलात्मक सौंदर्य न आगे बढ़ पाता है और न ही जहाँ का तहाँ रह पाता है। साहित्य का मूल्य राजनीति मूल्यों से अधिक स्थायी है।

जनसमुदाय जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में प्रवेश करते हें, तब भी उनकी अस्मिता नष्ट नहीं होती। कोई भी संरचना तबतक जीवित रहती है, जबतक वह उत्पादक शक्तियों को विकसित करती रहती है। प्रगतिवादी या प्रगतिशील साहित्य कोई आज ही नहीं लिखा गया। प्रत्येक काल की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति की पृष्ठभूमि में जो साहित्य मानव–जाति को गति दे सका है, वह प्रगतिशील माना जाएगा। यही कारण है कि साहित्यिक परंपरा को समझे बिना न तो प्रगतिशील आलोचना हो सकती है, न साहित्य की रचना और न ही कोई बड़ा सामाजिक बदलाव। इसलिए साहित्यकारों, लेखकों, कवियों एवं आलोचकों के बीच साहित्यिक–विश्वदृष्टि पर विचार गोष्ठी होनी चाहिए। जिसका चरम लक्ष्य या परम उद्देश्य वास्तविकता का चित्रण या उद्घाटन हो। इसलिए कि कभी–कभी रचनाकार विषय वस्तु के प्रति क्या, स्वयं अपनी ही बेहतर समझदारी के क्षणों के प्रति, स्वयं अपने ही विवेक और संवेदनशक्ति की खुली संभावनाओं के प्रति न्याय नहीं कर पाते। क्योंकि हर विचारधारा आदर्श नहीं हो सकती; वह सत्य की तंग व्याख्या हो सकती है, लेकिन विचारों के बिना किसी साहित्यिक कृति की रचना भी संभव नहीं हो सकती

लेखक या कवि ही ऐसे होते हैं, जो समाज में मानवीय गुणों तथा मूल्यों को बचाए रखते हैं। श्रेष्ठ रचनाएँ कभी दुर्बल एवं अल्पजीवी नहीं होतीं, उसमें जीवन को जानने, समझने और नियमित करने की एक दृष्टि होती है, जीवनमूल्यों की संपूर्णता को पारिभाषित करने का संकल्प होता है, जीवन प्रवाह को प्राणवान बनाने की शक्ति होती है, सिद्ध लक्ष्य का द्वार खोलने का भेद होता है।

अपनी जिम्मेदारी के साथ साहित्य की ऊर्वर भूमि में संवेदना की बीज लेकर 'सुसंभाव्य' का यह अंक आपके हृदय को सहलाने–दुलराने आपके पास है।

आलेख

साहित्य, साहित्यकार और समाज

डॉ.गिरिजाशंकर मोदी
सिकन्दरपुर, मिरजानहाट, भागलपुर
मो0–9934095639

इस देश का आदमी आज अभाव, प्रताड़ना, असुरक्षा और हिंसक प्रतियोगिता के भँवर में, सामूहिक आत्महत्या के भयावह दौर से गुजर रहा है। परिस्थिति विशेष में अपनी जीवन रक्षा हेतु मूल्यों को तोड़ना, मर्यादाओं का हनन करना उसकी मजबूरी होती जा रही है। आज संसार के सिमटकर छोटा हो जाने से मूल्य नहीं, मात्र विकृतियाँ, अपराध और यौन कुठाओं की प्रकृत भावनाएँ ही पल्लवित और पुष्पित हुई हैं। दुष्प्रवृतियाँ, घृणा विद्वेष, स्वार्थ और हिंसा आज की सामाजिक जीवन शैली हो रही है। इस देश के राजनेताओं और पूँजीपतियों द्वारा जहाँ देश की सारी सम्पदाओं, सुखों और सुविधाओं को समेट लेने की अंधी दौड़ ने आम आदमी को अपने जीवन–यापन की जरूरतों से दरकिनार कर दिया है, वहीं साथ ही उसे अपने पैरों तले रौंदना भी शुरू कर दिया है। पेट की आग और कंगाली के अछोर दर्द के तले उनकी सारी मान्यताएँ, मर्यादाएँ और संवेदनाएँ कराह रही हैं। उनकी सारी मानवीय विरासत, उनका भावना जगत और मूल्य बोधी सोच विलुप्त होते जा रहे हैं। मानव, मानव के रूप में गौरवान्वित होना छोड़ता जा रहा है। देश में भेड़ियों के रूप में उग आये नवधनाढ्य शोषक वर्गों और तथाकथित राजनेताओं ने मानव इतिहास का वह पहला पन्ना, जहाँ से आदमी बनने की शुरुआत होती है, फाड़ डाला है। देश की वर्तमान व्यवस्था को आज अपनी विकृतियों के अलावे जनता को कुछ भी देने को नहीं है। जो व्यवस्था आदमी को आदमी बने रहने को कुछ नहीं दे पाती, इतिहास साक्षी है, वह व्यवस्था टिक नहीं पाती है। संसार से सामंती प्रथा का अंत इसका प्रमाण है। अतः साहित्यकारों का दायित्व बनता है कि वह आदमी के विकास के इतिहास के उस पहले पन्ने का अपना जीवन दस्तावेज बनाये रखे, तभी आदमी विकास के हर प्रक्रम पर आदमी ही बना रहेगा।

देश को अब आज के यथार्थ के साथ–साथ यह भी चिंता लग गई है कि 21 वीं सदी के स्वर्णिम भविष्य का सपना देखनेवाले इस संसार में इस देश का भविष्य क्या होगा, जबकि यहाँ रोज पैदा हो रही एक से एक नई दुष्प्रवृत्तियों के निरंकुश आघात के विकृत जाल में हमारे बाल और किशोर मन को विरासत में मिली संवेदनशीलता भी विलुप्त होती जा रही है और उसकी जगह लेने लग गई है प्राकृतिक पाशविक प्रवृत्तियों के अमानवीय पक्ष। उनके जीवन का लक्ष्य मात्र खुद के लिए सैर सपाटा, पॉश संस्कृति और पंचसितारा होटल की रंगीनियाँ है। ऐसे में उनके जीवन के सारे आयाम ही आमिष हो गये है। दूसरी ओर निम्न मध्यवर्गीय जनता के तथा अतार्किक संस्कारवाले व्यक्तियों के जेहन में शंकराचार्य और इमामों के धार्मिक अफीम ने उन्माद का जो हिंसक संस्कार डाला है, वह आज भी आदमी की दुर्दशा का जबर्दस्त कारण बना हुआ है।

भारतीय उपमहाद्वीप में एक गौरव प्राप्त स्नेहभरा नाम है, आसमाँ जहाँगीर का। वह कुछ दिन पूर्व यूरोप जाती हुई, भारत में दो दिनों के लिए रुकी थी। इन दो दिनों में वह बहुत सारे लोगों से पाटियों में और उनके घर जाकर मिली थी। अपनी पीड़ा का बयान बड़े साफ शब्दों में करती हुई बड़ी तल्खी से उन्होंने कहा था–'भारत के माहौल में बदलाव आ गया है। लोग अब जो भाषा बोलते हैं, वह धर्मनिरपेक्ष नहीं रही है, उससे दूसरे लोगों के विचारों के प्रति असहिष्णुता और उग्र राष्ट्रवादी देश का भाव आ गया है। अब यह तो वह भारत नहीं रहा, जिसकी सराहना मैं करती थी और पाकिस्तान को इसकी मिशाल देती थी।'

इस देश की इस बदतर स्थिति और परेशानी का पहला कारण यह है कि यहाँ स्वतंत्रता के नाम सत्ता का हस्तांतरण हुआ है और इसके साथ ही दूसरा कारण यह जुड़ गया कि इसके तत्काल बाद जनता की वास्तविक आजादी हेतु कोई आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति नहीं हुई। देश का नेतृत्व सामंती संस्कारवालों के हाथ में चला गया और शासन उन्हीं पुराने भ्रष्ट नौकरशाहों के हाथों में जिनका सब कुछ अंग्रेजों के पास गिरवी था। देश के बुद्धिजीवी और साहित्यकार सत्ता के गलियारे में, देश की आधी अधूरी आजादी की चिंता किये बगैर, अपनी सुसुप्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में लग गये। सदियों से देश की नसों में बहता दरबारी खून अपने वजूद के साथ निजत्व के घरौंदे में स्थिर हो गया और सब कुछ लोकतंत्र के नाम निरंकुश राजतंत्र ही रहा। इस देश का लोकतंत्र, इस देश का संविधान सब कुछ एकेडेमिक रहा। किताबों में बंद रहा देश का सुंदर सपना, जैसा कि हजारों वर्षों से धार्मिक पुस्तकों और पंडों, पुरोहितों का उपदेश, कहीं किसी जीवन में न उतर पाया।

इस देश के लोकतंत्र के नौकरशाह आजतक लोकतंत्रीय संस्कार में न आ पाये हैं। अफसर आज भी अंग्रेज अफसर बने अपनी अलग पहचान बनाने में जीते हैं। ठीक ऐसी ही बात पश्चिमी अफ्रिका के गुलामों में मिलती है। पश्चिमी अफ्रिका के गुलाम जब स्वतंत्र होकर अपने देश लौटे तो वे अपने समाज के अन्य लोगों के बीच यूरोपीय मालिकों जैसा दीखने का प्रयास करने लगे–जब भीषण गर्मी पड़ती थी, तो वे ऊनी कोट पहनते थे।

उक्त स्थितियों के लिए देश के साहित्यकार भी बहुत हद तक जिम्मेवार हैं। जहाँ आजादी के तत्काल बाद उन्हें एक नई सामाजिक व्यवस्था हेतु क्रान्ति–यज्ञ की समिधा बननी चाहिए थी, वहाँ वे साहित्य को अभिजात्य वर्ग (म्सपजम) की रखैल बना खुद मनोरंजन की वस्तु बन गये। वे नवधनाढ्य वर्गों एवं राजनेताओं की उदास बीबियों के दिल बहलाव का साधन बन गये। वे अपनी जिम्मेदारियों से अलग हो जनता को दिशाविहीन कर, उसे आत्मा, संकल्प और सोच के मानवीय पक्ष से अलग करते रहे हैं। रोज एक नये भड़ैत मंच स्थापित कर वे एक क्षणिक वाहवाही लूटते और सम्मान बटोरते हैं। मुद्रा लाभ हेतु साहित्य उनका व्यापार हो गया है। साहित्य को वे अपना व्यक्तिगत मामला मानते हैं, जबकि साहित्य को समाज की चिंता होनी चाहिए, समाज को इसकी चिंता हो या न हो।

साहित्यकारों को, इतिहास बोध के साथ जीने की बात होनी चाहिए और तभी हम अपनी दुर्दशा के मूल कारणों को जान, उनको हटाने को संकल्परत हो पायेंगे। जब हमारे साहित्यकार भाट, भड़ुए और दरबारी बन गये तो फिर सदियों हम अघोषित गुलामी के दंश और दुर्दशा के गर्त्त में कराहते रहेंगे। पीठ पर कोड़ों के सैकड़ों निशानों के साथ जहाँ हम सदियों पशुवत् जीते रहे, वहीं हमारे रिश्ते दर्दों से असंवेदित हमारे साहित्यकार नख–शिख वर्णन के वीभत्स सौंदर्यगान में अपने स्वामियों की सेवा में रत रहे। लेकिन, इतिहास कभी किसी को नहीं छोड़ता है। जहाँ वह कब्र से हड्डियाँ निकाल उसे सम्मानित करता है, वहीं कब्र से निकाल उन्हें गोलियाँ दागता है। वाल्टायर को फ्रांसीसियों ने कब्र से निकाल सम्मानित किया एवं स्टालिन को कब्र से निकाल रुसियों ने गोलियाँ दागीं।

भड़ैत मंचों के भाट साहित्यकार कभी यह नहीं सोच पाते कि आखिर मैं समाज को क्या दे रहा हूँ?वे सोचेंगे भी क्यों, उनका तो उद्देश्य अपनी वाहवाही,पुरस्कार और मुद्रा रहता है। यह दायित्वहीन घटिया व्यापार साहित्य के नाम रुकना चाहिए। वास्तविकता है कि साहित्यकार किसी पुरस्कार से महत्व प्राप्त नहीं करते, उनकी महत्ता और गौरव तो उनकी कृतियों से होती है। साहित्य के लिए टालस्टाय को नोबेल पुरस्कार नहीं मिला था। रुडयार्ड किपलिंग को नोबेल पुरस्कार दिया गया, लेकिन

लोग उनका नाम तक नहीं जानते। इसके बरखिलाफ ओ. हेनरी को कभी कोई पुरस्कार नहीं मिला, लेकिन उनको लाखों लोग अभी भी पढ़ते हैं।

फ्रांसीसी लेखक ज्ञांपोल सात्र को जब 1964 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला था, तो उन्होंने यह कहकर उस विश्व प्रसिद्ध पुरस्कार को ठुकरा दिया कि मेरे लिए आलू के बोरे और साहित्य के नोबेल पुरस्कार में कोई खास फर्क नहीं है।

साहित्यकार की पहली चिंता यह होनी चाहिए कि हम क्यों लिख रहे हैं और क्या लिख रहे हैं। साहित्यकार का जीवन शास्त्र कभी अर्थशास्त्र नहीं होता, उनके कृतित्व से आदमी का वर्तमान और भविष्य दोनों जुड़ा रहता है। वह समाज का सजग पहरेदार और कान्ति का ध्वजवाहक होता है। वह मूल्य बोधी संस्कृति का संस्थापक, संरक्षक ओर योद्धा होता है। वह जमीन से जुड़े इंसान की प्रगति, प्रसन्नता और मूल्यों के हित होता है।

साहित्य आज की परिस्थितियों में मात्र समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं, वह समाज के चेहरे को विकृत करनेवाले तत्वों के खिलाफ इन्कलाब भी है। साहित्य स्वांतः सुखाय नहीं, बहुजन हिताय है। यह ।तज वित ।तजश्रे ाम (कला, कला के लिए) नहीं, यह ।तज वितं वबपमजलश्रैाम (कला, समाज के लिए) है। साहित्य संस्कृति का पोषक, संरक्षक और मूल्य का संवर्द्धक है। यह किसी कौम की जीवन्त पहचान है।

इतिहास साक्षी है, बिना साहित्य के कोई भी संस्कृति इस धरती पर जीवित नहीं रह पाई है और अगर संस्कृति जीवित नहीं रह पाई है तो वह कौम भी धरती से विलुप्त हो गई है। आदमी अपनी संस्कृति में जीकर ही अपनी एक विशिष्ट पहचान के साथ आदमी है, अन्यथा मशीन।

मेसोपोटामिया की सभ्यता में असीरिया नामक एक साम्राज्य का उदय हुआ था, इस साम्राज्य की सभ्यता की ख्याति मात्र इतनी ही रही है कि इसके शासकों ने लगातार 700 वर्षों तक युद्ध किया था। इस 700 वर्षों के युद्धकाल में वहाँ साहित्य और संस्कृति का विकास शून्य रहा था। जब इस साम्राज्य का पतन हुआ तो उसकी राजधानी निनवे मात्र 12 दिनों में ध्वस्त हो गई और जब 300 वर्षों के बाद सिकन्दर जब वहाँ पहुँचा तो वह उस देश की राजधानी निनवे पर खड़ा था, परन्तु उसे वहाँ निनवे के कोई अवशेष नहीं मिल रहे थे।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में आम आदमी को केन्द्र में रखते हुए खासकर सत्तर के दशक से बहुत सारे साहित्यकारों ने लिखना शुरू किया है। पर ऐसी जनहितैषी साहित्य सर्जना, जो समय की पुकार है, को पाठ्य–पुस्तकों में संकलित नहीं कर मध्य युगीन तथा आदमी के सरोकारों से अलग की रचनाएँ संकलित की जा रही हैं। ऐसी परिस्थिति विशेष में क्या साहित्य समय शिला पर किसी जीवित व्यक्ति को खड़ा कर पाएगा?अतः साहित्यकारों को आज दोहरे उत्तरदायित्व बोध में जीना है। सर्जना के साथ–साथ अपने साहित्य को उस अंतिम व्यक्ति तक ले जाना है, जिसके लिए वह लिखा गया है।

उत्तर आधुनिकतावाद आज साहित्य के सामने एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ा किया है। यह साहित्य को जीवन से अलग कर उसकी जगह अनेक दुष्प्रवृत्तियों को जगह दे रहा है। यह जीवन से उसके विशाल दर्शन, उसकी आकाशगंगा और गंगोत्री को समाप्त कर एक घृणित भोगवादी संस्कृति को विकसित कर रहा है, जहाँ जीवन अति व्यक्तिवादी हो, सामाजिक जीवन के हर ताने–बाने को तोड़ हमें कर्महीन, विवेकहीन और हृदयहीन बना देने की गहरी साजिश में है। इस साजिश के तहत ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के हवाई हमले, माइकेल जेक्शन के सैक्सी हुड़दंग विकी भार्गव की सैक्सी पत्रिकाएँ, अंजलि कपूर की नंगी तस्वीरें, ममता कुलकर्णी का अंग प्रदर्शन और रूपर्डमारडाख का भारत में अति विशिष्ट स्वागत एक अमर्यादित यौन–भोग संस्कृति को विकसित कर रह है।

इस उपभोक्तावादी संस्कृति के आक्टोपस ने अपनी खूनी भुजाएँ, तीसरी दुनिया के देशों के अलावा गोर्बाचोव और येल्तसीन के ध्वंस यज्ञ के बाद रूस जैसे समाजवादी देश में भी फैलाना शुरू कर दिया है। आज रूस की सुंदरियाँ, जिसने देह व्यापार की बात न सीखी थी, मॉडल बनने की प्रतियोगिता में कतार लगाये खड़ी हैं। च्संल इवल पत्रिका के जेफ कलिनस ने रूस के विघटित होते ही रूस की सुंदरियों को अपने पाठकों के मीनू में रखने का सपना देखा। इस सपने के साथ डरता हुआ वह रूस पहुँचा। लेकिन उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा, जबकि उसकी एक पुकार पर रूस की सुंदरियाँ झीना लिबास पहन अपनी तस्वीरें खिंचवाने कतार में खड़ी हो गयीं। जेफ कलिन्स ने मास्को की लड़कियों के बारे में अपनी टिप्पणी दी–''सारे यूरोप की तरह ही रूस की लड़कियाँ भी दुविधाहीन हैं, वे शरीर के लिए तनिक भी लज्जित नहीं है, भरे कमरे में लोगों के बीच झटाझट कपड़ा खोलने में उन्हें कतई संकोच नहीं है।''

ऐसी गंभीर और आक्रामक परिस्थिति में अगर भूमंडली करण और विश्व बाजार के अंतर्राष्ट्रीय मन एवं उनकी कुत्सित मंशाओं को हमारे सचेष्ट और सचेत मन का कवच निराश न कर पाया तो लगता है, वह दिन दूर नहीं, जबकि देश की सारी किताबों को दीमक चाट जायेगी और सैक्सी तत्वों द्वारा आरोपित कोलाहलमय अमानवीय संस्कृति में जीवन एक मकड़जाल बनकर रह जाएगा। मनुष्य के अपने न्यायसंगत अधिकारों की लड़ाई, मूल्यों की खोज एवं विकास की प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में साहित्य रहा है। इस हेतु संसार में क्रान्तियों की जितनी मशालें जली हैं, उनमें साहित्यकारों का रक्त–स्नेह ही जला है। बर्नार्ड शा कहा करते थे–'देश का वास्तविक शासक वहाँ का साहित्यकार हुआ करता है, राजनेता नहीं। फ्रांस के कुख्यात अधिनायक नेपोलियन बोनापार्ट ने कलम की ताकत से घबराकर कहा था कि मैं तलवार से उतना नहीं डरता, जितना कि मुझे अखबार से डर लगता है। जर्मनी के सुप्रसिद्ध लेखक नीत्से ने वर्षों से सोई फ्रांस की जनता को जगा लुई 16 से उसकी सत्ता ही छीन ली थी। वाल्टायर, टाल्सटाय एवं रक्सिन का साहित्य, चार्ल्स डिकेन्स की पुस्तक 'व्सपअमत जूपेज' रूसो की पुस्तक 'वबपंस ब्वदजतंबज' रवीन्द्रनाथ ठाकुर की किताब 'सोनार बंगला' और बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की कविता 'वंदे मातरम्' ने सामाजिक जीवन में क्रान्ति और बदलाव की एक जबर्दस्त भूमिका दी। साहित्य की शक्ति से तानाशाहों की घबराहट का इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि ग्वाटेमाला के फौजी तानाशाह ने स्पेनिश कवि कास्तिलो को 31 वर्ष की भरी जवानी में जिंदा जला दिया। वल्गारिया के क्रान्तिकारी कवि निकाला वपत्सोरोव को फाइरिंग स्क्वाड ने गोली से उड़ा दिया, गोली लगने ने पूर्व वपत्सोरोव खिस्तोवोतेव की कविता होता है जो स्वाधीनता के लिए धराशयी, वह मरता नही–गुनगुना रहे थे। ईरानी कवि खुसरो गुलसुर्खी को उसकी कविता के लिए मौत की सजा दी गई। पंजाब के सस्कृतिकर्मी अवतार सिंह पाश की निर्मम हत्या करा दी गई। तमिल कवि बरबराराव को झूठे मुकदमे में फँसा जेल के अंदर सड़ा डाला गया।

मुस्लिम देशों में तो साहित्यकारों की स्थितियाँ और भी बदतर है। वहाँ अभी भी मध्यकालीन बर्बरता का युग समाप्त नहीं हुआ है। इस सदी (बीसवीं) के उत्तरार्द्ध में वहाँ 70 साहित्यकारों को मौत की सजा दी चुकी है। 200 से अधिक साहित्यकार जमींदोज हैं या निर्वासित और एक हजार से भी अधिक साहित्यकार विचाराधीन कैदी हैं।

21वीं सदी की दहलीज पर खड़ी दस्तक देनेवाली इस दुनिया को अगर आज भी हम मध्यकालीन बर्बरता के बीच तड़पते देखते रहे, तो यह घोर ग्लानि ओर चिंता के विषय के साथ एक घातक बात होगी। अतः साहित्यकारों को अपने उत्तरदायित्व बोध में समाज की अगुवाई करते हुए उसे सही दिशा निर्देश देना है। अगर वह अब भी भाट संस्कृति में साहित्यिक मंच को भडुआ मंच बना मात्रा आनंद और वाहवाही की वस्तु बना रहा तो आनेवाला कल उसे कभी माफ नहीं करेगा।

भूख, अभाव, प्रताड़ना और तबाही में दम तोड़ते लोगों के बीच

अगर कोई साहित्यकार सहज प्रकृत भावनाओं के उछाल में प्रेम की गीत गुनगुना साहित्यकार होने का दंभ भरता है तो उसे साहित्यकार नहीं मानव द्रोही की संज्ञा से संबोधित किया जाना चाहिए। अगर धर्मगुरु धर्म के नाम पर आदमी की बलि चढ़ा रहा हो, उससे उसके शरीर के प्रति धर्म और जीने के सहज अधिकार और न्याय की बात न करता हो तो उसे धर्मगुरु नहीं नृशंस जल्लाद कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। अपने अभावों और दुर्दशा में मरता हिन्दू धर्मावलंबी अपने सही जीने की किरण देख धर्मान्तरण करता है, तो स्वर्ण छत्र के नीचे सिंहासन पर विराजमान हमारे शंकराचार्य उनका विरोध करते हैं। इस दिशा में स्वामी विवेकानंद की सोच ही वास्तव में धार्मिक है। उन्होंने कहा था कि जबतक इस देश में एक भी व्यक्ति भूखा और नंगा है, अगर कोई अपने को धार्मिक कहता है तो वह गलत है।

समय के बढ़ते चरण की मानवीय सोच में दक्षिण भारत की एक अभिनेत्री स्नेहलता रेड्डी द्वारा सीता चरित्र पर लिखे एक नाटक के एक संदर्भ का उल्लेख करना यहाँ समीचीन होगा। राम द्वारा अग्नि परीक्षा की बात करने पर सीता कहती है–'हे राम! मैं तुमसे जितने दिन अलग थी, तुम भी तुझसे उतने ही दिन अलग थे। अतः सर्वप्रथम तुम अपनी पवित्रता की अग्नि परीक्षा दो, तब मैं दूँगी।

आज की गंभीरतम स्थितियों के विश्लेषण के साथ साहित्यकारों की क्रान्तिधर्मिता अगर आगे नहीं आई तो फिर पता नहीं मानव अपनी दुर्दशा के गर्त में न जाने और कितनी सदियों तक कराहता रहेगा। अमानवीय व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का संस्कार, ऊर्जा और संकल्प साहित्य ही देता है। बिना साहित्य के कोई मूल्य या संस्कृति पैदा हो ही नहीं सकती। धर्मगुरुओं द्वारा हजारों वर्षों से दिये जा रहे उपदेशों को मानव मन पर कोई असर नहीं हुआ है। हिन्दू धर्म के लगभग 9000 धार्मिक ग्रंथों ने आदमी को आदमी नहीं बनाये रखा, उसे विभाजित, शोषित और वंचित बना कर देश की संस्कृति का गलत गौरव गान गाता रहा है। जहाँ एक बूँद की आशा में बच्चे दम तोड़ते रहे, वहाँ यह प्रचारित किया जाता रहा कि यहाँ दूध की नदियाँ बहती हैं। जहाँ दरिद्रता की हद में नंगे भूखे लोग तड़प–तड़पकर मरते रहे, वहाँ कहा जाता रहा कि यह देश सोने की चिड़िया है। सामंतों,राजाओं और पुरोहितों ने अपनी दुर्नीति की मिलीभगत से देश की सारी सुख–सुविधाओं को अपने लिए समेट लिया और देश के शेष लोगों को संस्कृति की झूठी मृगतृष्णा के तले तबाह करते रहे। यह सब कुछ तब होता रहा, जब साहित्य को जनता का पक्ष लेने नहीं दिया गया। साहित्य एक भाट परपंरा में जीता रहा। अंग्रेजी के महाकवि ीमससल ने कहा है–'जीम इंपे वि उवतंसपजल पे संपक दवज इल जीम चतमंबीमत इनज इल जीम चवमजण'

साहित्यकारों के उत्तरदायित्व–बोध को उजागर करते जर्मनी के महान क्रांतिकारी कवि वर्त्तोल्त ब्रेख्त की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना यहाँ उपयुक्त होगां

तुम्हारा विज्ञान व्यर्थ होगा तुम्हारे लिए
और अध्ययन बाँझ अगर पढ़ते रहे
बिना समर्पित किये अपनी बुद्धि को
सारी मानवता के सारे शत्रुओं के विरुद्ध।

लघुकथा

सैम्पल पुस्तकें

उर्मिला प्रसाद
मेंहदी बगान, बर्दमान, पश्चिम बंगाल

जनवरी महीने से ही पुस्तक प्रकाशकों के कई एजेंट किताबों के बंडल लेकर एक एक करके स्कूल में आने लगे थे। सबको अपनी किताबें स्कूल में लगवाने की जबरदस्त ख्वाहिशें थीं। सैम्पल किताबों से ऑफिस के बगल वाला कमरा और ऑफिस दोनों भर गया था। एक से बढ़कर एक रंग–बिरंगी पुस्तकें, चमकीली आकर्षक किताबें, सुनहली, रूपहली कवरवाली और अंदर के पेज भी कितने खूबसूरत। मँहगी भी उतनी ही। इन्हें देखते ही बच्चों में पढ़ने की ललक पैदा हो जाए...हर प्रकाशक चाहता है कि उसकी किताब ज्यादा से ज्यादा स्कूल में लग जाए। एजेंट जब पुस्तक लेकर आता है, तो चाहता है कि हेड श्रुति उन्हें ध्यान से देखें और अपने स्कूल के सेलेबस में इसे लगवा ही लें। इसलिए वे अपनी किताबों की खूबियाँ गिनवाते, पन्ने पलट पलटकर उसे दिखलाते, ये देखिए मैडम, ये हमारे प्रकाशन की एकदम लेटेस्ट किताब लांच हुई है। इसमें एकदम नये तरीके से बच्चों को पढ़ाने की टेक्निक है, जो बात इसमें है, वो दूसरी किताबों में नहीं मिलेगी। श्रुति सबको यह कहकर आश्वासन देती कि रख जाइए, बाद में देख लूँगी। सैम्पल देने के बाद कंपनी का एजेंट जाते–जाते भी बड़ी विनम्रता से बोलते, देखिएगा जरूर मैडम, अगर हमारी एक–दो किताब लग गई तो मुझे कुछ कमीशन मिल जाएगा। कुछ कमीशन के लिए ही दिनभर यहाँ वहाँ स्कूलों में दौड़ते रहते हैं। गरीब आदमी हैं, कोई दूसरा काम नहीं है। श्रुति के वश में रहता तो इस एजेंट की सब नहीं, तो आधी किताब लगवा ही लेती, लेकिन इस जैसे सभी एजेंट यही रोना रोते हैं, वो क्या करे...तो...इन किताबों की कवर की ही तरह श्रुति भी अपने कोमल मनोभावों पर कछुए की सख्त खोपड़ी का एक आवरण चढ़ा रखी थी। यह समय और पद की गरिमा की माँग थी...वह सभी को स्वीकार में यूँ ही सर हिला देती, जिससे साफ पता चल जाता कि स्वीकार नहीं है...इतने प्रकाशन...सभी की किताबों को सेलेबस में लगाना असंभव... फिर भी मात्र आश्वासन।

जब एजेंट चला जाता, तो किताबों को वे उलटती पलटती। उसे कुछ याद आता, 'अपने स्कूल के समय की वो काली सादी किताबें...कितनी नीरस थी वो...। कभी–कभी तो सेकेंड हैंड से ही काम चलाना पड़ता था.... बड़ी दीदी की पढ़ी हुई पुरानी किताब....जिसके कुछ पेज गायब रहते थे...। खैर, लिए जगह ही नहीं है...शहर के लाइब्रेरी वाले भी इन किताबों की पूछ नहीं करते। अगर इस स्कूल के बच्चों में भी फ्री बाँट भी दी जाय, तो ये उसकी कद्र नहीं करेंगे, उनके पास अपनी किताबों को ही पढ़ने का समय नहीं होता...हर साल की तरह इस साल भी इन्हें कबाड़ी की दुकान पर रद्दी के भाव बेचना पड़ेगा, उफ् नहीं इस बार पैसा नहीं होगा...।

कुछ दिनों के बाद श्रुति के सहयोग से, विषय से संबंधित शिक्षकों ने, सारी सैम्पल किताबों को छाना, उसके बाद अगले दिन बची हुई किताबों में से कुछ किताबें श्रुति ने एक बड़े से बोरे में भरा और रिक्शे पर लादकर चल पड़ी। रिक्शा जाकर रुका शहर के चाइल्ड केयर सेंटर के दरवाजे पर। चाइल्ड केयर सेंटरएक एनजीओ है, जो अनाथ और घर से भागे हुए बच्चों की देखभाल पुलिस प्रशासन और कोर्ट की मदद से करता है। सेंटर में पहुँचकर उसने वहाँ के इंचार्ज से बात की और अपने हाथों एक–एक करके सभी किताबें बच्चों में बाँट दी। बच्चे बड़े खुश हुए थे। जैसे ही उनके हाथ में किताब आती, वे उसे उलट–पुलटकर देखने लगते। उन्होंने इससे पहले इतनी सुंदर और रंगीन किताबें देखी न थी। बच्चों के चेहरे की खुशी देखकर श्रुति को अपार प्रसन्नता हो रही थी। उसे उन किताबों के सदुपयोग पर काफी संतोष हो रहा था।

आलेख

सामाजिक चेतना और संचार

डॉ. मजीद मिया,
सहायक प्रोफसर,
मस्जिदपाड़ा बागडोगरा,
दार्जिलिंग पं.बं. मो.–9851722459

जब इंसान धीरे–धीरे संगठित और समुदाय व समाज के रूप में रहने लगा, तब माध्यमों का जरिया भी विकसित और दृढ़ होता नजर आया, जिससे इनका कार्य क्षेत्र भी अलग–अलग स्वतंत्र अध्याय और विषय के रूप में सत्ता उपलब्धियों के साथ– साथ वैश्विक अंतरसंबंधों को बदलते समीकरण और बढ़ती सामरिक, व्यापारिक, राजनीतिक, राजनयिक आकांक्षाओं के बीच संचार के माध्यमों को भी गति मिली। सर्वप्रथम मुद्रण मशीन का आविष्कार, टेलीग्राम की खोज तथा चार्ल्स हैवस द्वारा पहली समाचार एजेंसी की स्थापना, जगत में मील का पत्थर सिद्ध हुई। स्थलीय ट्रांसमीटर के पश्चात् भूमिगत केवल और उपग्रह व्यवस्था ने सचार को नए आयाम दिये, जिसने सचार माध्यमों की काया पलट दी और भिन्न–भिन्न भाँति मीडिया का प्रभाव बढ़ा। आजादी के आसपास टी.वी. प्रसारणों की शुरुआत के साथ ही इनकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए कई चैनल माध्यम का जरिया बने। अब तो इंटरनेट, टी.वी. भी बाजार में उपलब्ध है। इंटरनेट ने तो संचार माध्यमों में चार चाँद लगाने का काम किया, जो 80 दशक में अवतरित हुआ और 90 के दशक में 'वर्ल्ड वाइड वेब' के जरिए इंटरनेट पर ग्राफिक्स संभव हो गये। भारत में आज करीब 50 लाख लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं। इंटरनेट के जरिए विभिन्न बेवसाइट के माध्यम से भौतिक जगत की समस्त सूचनाएँ उपलब्ध हैं तथा साथ ही ई–मेल और चैटिंग के जरिए अज्ञात व्यक्तियों के साथ बातचीत और मनोरंजन भी किए जा सकते हैं। कंप्यटर के माध्यम से जिन संचार सुविधाओं का पोषण हुआ, उनमें ऑडियो–कांफ्रेंसिंग, वीडियो कांफ्रेंसिंग, टेली कांफ्रेंसिंग, रेडियो टेक्स्ट, वीडियो टेक्स्ट, टेली टेक्स्ट जैसी आधुनिकतम सूचना प्रणाली भी शामिल है। संप्रेषण, मुद्रण और प्रसारण के क्षेत्रों में हो रहे आविष्कार, प्रशिक्षण, उपग्रहों, बैंकों, कंप्यूटर और अंतर महाद्वीपीय प्रकृति में वस्तुतः पत्रकारिता जगत में अद्‌भुत क्रान्ति मचा दी है। आज कंप्यूटर क्रांति से पत्रकारिता की काया पलट गयी है। वीडियो की वजह से घर–घर में मनोनुकूल फिल्में तैयार हो रही है, घर का हर सदस्य अभिनेता बन रहा है, अपनी ही कहानी का स्वयमेव फिल्मांकन हो रहा है। उसी प्रकार वह दिन दूर नहीं, जब प्रत्येक व्यक्ति पत्रकार होगा, उसका अपना पत्र होगा, समाचार के लिए कोई कोई अन्याश्रित नहीं होगा। केन्द्रीय स्थल से समाचार पत्र घर–घर में 'टैली व्यू' के कारण उपलब्ध होगा। 'टेली व्यू' के बटन को दबाकर हम समाचार, व्यापार जगत, खेल समाचार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

लोक कल्याण, मनोरंजन तथा राष्ट्र निर्माण के साथ समाचार पत्रों के तीन प्रमुख कर्तव्य माने जाते हैं, उनमें जनमत को प्रदर्शित करना, जनमत का मार्ग निर्देशन करना। परन्तु वर्तमान समय में भी मीडिया का दायित्व बदलता नजर आ रहा है, जिसे वरिष्ठ पत्रकार राकेश के कथन से आसानी से समझा जा सकता है–''आज मीडिया संस्थानों में काम करनेवाले अपने अधिकांश साथियों को गाड़ियों पर प्रेस लिखवाकर घूमते देखता हूँ, तो यह आशंका बलवती हो जाती है कि मीडिया के नाम पर हमें पुलिस परेशान नहीं करती, सरकारी दफ्तरों में आसानी से काम हो जाता है, डॉक्टरों की क्लीनिक में नंबर नहीं लगाना पड़ता, बच्चों के एडमिशन में सहूलियत मिल जाती है, सारे नेता अधिकारी हमसे एक फोन की दूरी पर होते हैं। ये तो सामान्य सहूलियतें हैं। कई पत्रकार तो ऐसे भी होते हैं, जिन्हें थानों से बँधी–बँधाई रकम मिलती है। वे इतने प्रभावशाली होते हैं कि छोटे–मोटे सरकारी कर्मचारी का तबादला करवाने में भी मदद कर देते हैं। वे अपने प्रभाव का इस्तेमाल अपने या अपने किसी परिचित के पक्ष में सरकारी टेंडर हासिल करने तक में करते हैं।'' आज एक पत्रकार/संपादक अपनी पत्रकारिता के प्रति प्रतिबद्धता को कहीं नजरअंदाज पर व्यावसायिकता और सरकारिता की तरफ उन्मुख होता नजर आ रहा है। मीडिया समाज की दशा और दिशा बदलने में सक्षम है। दुर्भाग्य से गरीब और विकासशील देशों में मीडिया की भूमिका आज भी खुलकर सामने नहीं आ पाई है। वहाँ मीडिया या तो ऊँची पहुँचवाले राजनीतिज्ञों अथवा तानाशाहों के दबाव में खुलकर सामने नहीं आ पाता या फिर उनकी विरुदावलियों गाने में ही अपना भला समझता है। कॉरपोरेट सेक्टर की चमक–दमक में चुँधियाया मीडिया नीचे काश्तकार तबके के संघर्षों की कालिमा को नहीं देख पाता। मीडिया चाहे तो किसानों–मजदूरों को उनका हक दिला सकता है। बाजार का उतार–चढ़ाव और पूंजी का प्रवाह मजदूरों–किसानों के हाथों में हो सकता है। जरूरत है तो बस ईमानदार मीडियाकर्मियों की जो व्यर्थ थूक उछालने की बजाय सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के प्रति कटिबद्ध हों। वर्तमान समय में मीडिया मजदूर, किसान या कोई भी ग्रुप जो विकास से दूर है, उसको मुख्य धारा में लाने तथा विकास में शामिल करने में दोहरी भूमिका अदा कर सकता है, बिल्कुल एक पुल की तरह, जो सरकार और विकास से पिछड़े ग्रुप के बीच में हो, जहाँ मीडिया सरकार या विकास की योजना बनानेवाले के लिए आँखें बनेगा,.....

..... को भी विकास से रूबरू करवाया जा सके। वहीं पिछड़े व विकास से अछूते ग्रुप को विकास के फायदे और उससे उनके जीवन में क्या परिवर्तन होगा, उसकी जानकारी उन तक देगा। मीडिया दोनों के मिसमैच को दूर करना मीडिया का कार्य होगा। मीडिया अपने इस डबल रोल की बखूबी प्ले करके बहुत से जीवन बदलने में मदद कर सकता है।

सूचना और तकनीक ने वर्तमान युग को एक नए मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया है। आज हम विश्व में घटित घटनाओं को सीधे अपने घर बैठे देख सकते हैं और देशी–विदेशी समाचारों के प्रदर्शन पर अपनी राय भी भेज सकते हैं। इन सबका श्रेय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से केवल जनसंचार के माध्यमों को जाता है। जो सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं व रूढ़ियों की जटिलताओं का निस्तारण करते हुए एक नए समाज की स्थापना कर रहा है, वह भी नैतिक मूल्यों के साथ। लोगों की जीवन शैली में जो परिवर्तन आया है, वह मीडिया परिवर्तन का ही फल है। आज का व्यक्ति भले ही अभावों में जी रहा है, पर वह किसी न किसी रूप में मीडिया के माध्यम से हर अच्छे व बुरे पहलू को समझ रहा है। अगर मीडिया इतनी प्रभावी नहीं होती तो सूचना इतनी तेजी से नहीं पहुँच पाती। मीडिया लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में समाज को मजबूत दशा और दिशा प्रदान कर रहा है। जनहित की रक्षा के लिए सरकार पर नियंत्रण रखते हुए लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूती प्रदान करने का कार्य मीडिया ही कर रही है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक चेतना का विकास के साथ अन्य क्षेत्रों का विकास हो रहा है, जिससे खेती और परिवार कल्याण जैसे कार्यक्रम को प्रोत्साहन मिल रहा है। आज खेल का मैदान भी मीडिया से अछूता नहीं रहा है। इसके द्वारा खेलों की जानकारी के साथ–साथ देशी तथा विदेशी खेल भावना का विकास हो रहा है। आज महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक का श्रेय मीडिया को जाता है। ग्लोबलवार्मिंग के इस दौर में पिछले एक दशक से जिस उपभोक्तावादी संस्कृति ने जन्म लिया है, उसका प्रभाव

आज पूरे विश्व में देखने को मिल रहा है। समाचार चैनल आज उन्हीं समाचारों को दिखाने में ज्यादा रुचि लेते हैं, जिन्हें दर्शक देखना पसंद करते हैं। भले ही हमारे दिलो दिमाग पर उसका कैसा भी असर पड़े। आज भारत की जनता जहाँ अस्सी प्रतिशत मीडिया की बातों को सच मानकर चलती है। ऐसे में लोगों की भावनाओं से खेलना मीडिया का अपने कर्तव्य से भटकना माना जाएगा। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में खबर को मसालेदार और चटपटा बनाने की होड़ में सच्चाई को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत करना अब समाचार चैनलों के लिए आम बात हो गई है। विज्ञापन की अधिकता जहाँ मीडिया के सकारात्मक प्रभावों को कम कर रहा है, जिसके कारण तीस मिनट के कार्यक्रम में सत्रह से उन्नीस मिनट विज्ञापन में ही चला जाता है। वही एक समाचार को पूरे दिन चलाना जैसे चैनलों के लिए आम बात हो गयी है। समय के साथ–साथ समाचारों व विज्ञापनों में अपनी गुणवत्ता व अपनी–अपनी मान मर्यादाओं का ख्याल भी रखना चाहिए, ताकि समाज पर बुरा असर नहीं पड़ जाए। लोकतंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका के समुचित ढंग से कार्य नहीं करने पर लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया को अपनी सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। आज का सबसे बड़ा सरोकार है, नकारात्मक भूमिका से सकारात्मक भूमिका में परिवर्तन। मीडिया जितनी सख्त होगी, उतना ही सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन होगा।

अपनी शुरुआत के दिनों में पत्रकारिता हमारे देश में एक मिशन के रूप में जन्मी थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक चेतना को और अधिक जागरुक करने का था, तब देश में गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे युवाओं की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आजादी के लिए संघर्षमयी पत्रकारिता को देखा गया, कल के पत्रकारों को न यातनाएँ विचलित कर पाती थीं, न धमकियाँ। आर्थिक कष्टों में भी उनकी कलम काँपती नहीं थी, बल्कि दुगुनी जोश के साथ अंग्रेजी के खिलाफ आग उगलती थी, स्वाधीनता की पृष्ठभूमि पर संघर्ष करनेवाले और देश की आजादी के लिए लोगों ने अहिंसा का अलख जगानेवाले महात्मा गांधी स्वयं एक अच्छे लेखक व कलमकार थे। महामना मालवीय जी ने भी अपनी कलम से जनता को जगाने का कार्य किया। तब पत्रकारिता के मायने थे देश की आजादी और फिर आजादी के बाद देश की समस्याओं के निराकरण को लेकर अंतिम दम तक संघर्ष करना और कलम की धार को अंतिम दम तक तेज रखना। इसका अंदाजा आज केवल एक उदाहरण सा लगता है–''बात सन् 1907 की है, तब देश भर में 'स्वेदशी आंदोलन' चल रहा था, उसी दरम्यान इलाहाबाद से श्रीशांति नारायण भटनागर ने अपनी जमीन–जायदाद बेचकर 'स्वराज्य' नामक अखबार निकाला और अंग्रेजों के खिलाफ कलम की धार को उग्र किया, उन्हें 3 वर्ष के लिए कैद की सजा तथा जुर्माना न पटाने पर 6 माह अतिरिक्त सजा मिली। इसके बाद 'स्वराज्य' के संपादक हुए श्रीरामदास (प्रकाशानंद सरस्वती), इनके बाद बाबू रामहरि। इसके बाद तो यह सिलसिला चलता ही रहा, एक संपादक गिरफ्तार होता तो दूसरा उसकी जगह ले लेता। इसी क्रम में बाबू रामहरि को 21 वर्ष के लिए कैदा, मुंशी रामसेवक को अंडमान में कैद, नंदगोपाल चोपड़ा को 30वर्ष देश से निर्वासन की सजा, लद्धाराम कपूर ने तीन अंक ही निकाला था कि उन्हें 30 वर्ष की कालेपानी की सजा हुई। इसके बाद अमीरचन्द बम्बवाल ने स्वराज्य का प्रकाशन शुरू किया। अमीरचन्द बम्बवाल ने अखबार में विज्ञान दिया कि 'संपादक चाहिए, वेतन व दो सूखी रोटियाँ, गिलास भर पानी और हर संपादकीय लिखने पर दस वर्ष के कालेपानी की सजा।''इसके बाद भी एक–एक कर आठ संपादक और हुए, जिन्हें कुल 125 वर्ष कालेपानी की सजा दी गई, लेकिन इसके बावजूद स्वराज्य का प्रकाशन निरंतर जारी रहा और आमजनों में आजादी के लिए जागरुकता का संचार लगातार होता रहा, लेकिन आपके इस दौर में कहाँ पर हैं और आमजनों को उनकी समस्या का हल कौन देगा, यह बतानेवाली पत्रकारिता अपने आप से आज यह सवाल पूछ रही है कि मैं कौन हूँ?आज देश, आतंकवाद, नक्सलवाद जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है, लेकिन इसके निपटने के लिए आमजनों को क्या करना चाहिए, सरकार की क्या भूमिका हो सकती है, सहित कई मुद्दों पर मीडिया आज मौन रुख अख्तियार किये हुए है। सर्वप्रथम किसी खबर को दिखाने की होड़ में मीडिया के समक्ष नक्सली हमला के तुरंत बाद ही हमला करनेवाले कमांडर व अन्य आरोपियों के फोन व ई–मेल तक आ जाते हैं। न्यूज चैनलों से लेकर अखबारों में आतंकियों व नक्सलियों के इंटरव्यू छप जाते हैं। लेकिन गौर करनेवाली बात यह है कि बार–बार वह प्रतिदिन इस समाचार को दिखाने व छापने से फायदा किसका होता है, आम जनता का, पुलिस का, नक्सली व आतंकी का या फिर मीडिया घरानों का। निश्चित रूप से इसका फायदा मीडिया व इन देशद्रोही तत्वों को होता है, जिन्हें बिना किसी कारण से बढ़ावा मिलता है, क्योंकि बार–बार इनको प्रदर्शित करने से आमजन व बच्चों में संबंधित लोगों के खिलाफ खौफ उत्पन्न हो जाता है और ये असामाजिक तत्व चाहते भी यही हैं। इसलिए आज जरूरी है कि मीडिया और इसको चलानेवाले ठेकेदारों को यह तय करना होगा कि मीडिया ने सामाजिक सरोकारों को दूर करने में कितनी कामयाबी हासिल की है, यह उन्हें खुद ही देखना व समझना होगा। ऐसा भी नहीं है कि मीडिया ने सामाजिक सरोकारों को एकदम से अलग कर दिया है, लेकिन लगातार मीडिया की भूमिका कई मामलों में संदिग्ध सी लगती है। कई विषयों जहाँ पर न्याय दिलाने की जरूरत होती है एवं लोगों को मीडिया से यह अपेक्षा होती है कि मीडिया के द्वारा उनकी माँगों व समस्याओं पर विशेष ध्यान देते हुए समस्या का समाधान किया जाएगा, ऐसे कई मौकों पर मीडिया की भूमिका से लोगों को काफी असहज सा महसूस होता है। कभी कभी तो ऐसा भी महसूस किया जाता है कि कुछ मीडिया घराना किसी एक व्यक्ति, पार्टी व संस्था के लिए ही कार्य कर रही है, अतः मीडिया को एक बार फिर से ठीक उसी तरह निष्पक्ष होना पड़ेगा, जिस तरह आजादी के पहले व अभी कुछ आंदोलन में जनता के साथ देखा गया।

वर्तमान समय में यह सब मीडिया क्यों नहीं कर रहा है, इन सबके पीछे वस्तुस्थिति क्या है, इनके विलाप प्रवचन और आत्माधिकार की राजसत्ता शक्तियाँ और हिंदी प्रेस के आर्थिक रिश्तों को वैज्ञानिक नजरिए से समझना और विश्लेषित करना जरूरी हो जाता है। निःसंदेह स्वतंत्रता के बाद आरंभिक वर्षों में मीडिया स्वतंत्रतापूर्ण मूल्यों से प्रेरित थी। काफी हद तक उसमें अपने मिशन की भावना था। उस समय 'माध्यम से ही संदेश' के गुरुमंत्रानुसार प्रेरित रहती थी। सामाजिक दायित्व व मूल्यों की प्रतिबद्धता तथा मालिकों के बीच विलगाव जैसा कोई काँटा नहीं उभरा था। यह वह दौर था, जब राजनीति सत्ता प्राप्ति से नहीं, वैचारिक शुद्धता और विचारात्मक प्रतिबद्धता से प्रेरित हुआ करती थी, परन्तु वर्तमान दौर से मीडिया का स्वरूप और दायित्व में बदलाव दिखायी दे रहा है। आज मीडिया में अपने संरक्षकों को ज्यादा महत्व देने के साथ अपने दायित्वों की उपेक्षा करता नजर आ रहा है। वर्तमान समय में व्याप्त गंदी राजनीति को आधार बनाकर मीडिया ज्यादे–से–ज्यादा बदलती सरकार के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर कर रहा है, जो उनके मूल्य और दायित्वों को दोनों में परिवर्तन का सूचक है। साथ ही मीडिया अपने मुख्य उद्देश्य के साथ–साथ जनता के प्रति दायित्व को छोड़कर व्यावसायीकरण की आड़ में फँसता आ रहा है। जो स्वयं मीडिया और देश के लिए खतरा साबित हो सकता है। इस व्यावसायिकता को हम प्रोफेशनलिज्म कह सकते है। ये हिन्दी पत्रकारिता के बजाय अंग्रेजी पत्रकारिता में अधिक मुखरित हुआ। उदाहरण के तौर पर टाइम्स ऑफ इंडिया और हिन्दुस्तान टाइम्स के प्रकाशनों को माध्यम मानकर स्वीकार कर सकते हैं कि इन दोनों ने इलस्ट्रेड वीकली में जो व्यावसायिकता छठे, सातवें, आठवें दशक में रही, उसकी तुलना में नव भारत टाइम्स और दैनिक हिन्दुस्तान में देखने को नहीं मिलती। आज यह व्यावसायिकता और भी

घटिया दर्जे की जुबान में लाइजनिंग तक भी पहुँच चुकी है। वर्तमान पत्रकारिता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह व्यापारिक घरानों के लिए लाइजनिंग का हथियार बने। इस प्रतिकूल परिस्थिति से निबटने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मीडिया अपने दायित्वों को न भूले और अपने निर्धारित लक्ष्यों को आधार बनाकर कार्य को गति देवे तथा साथ ही सरकार का यह दायित्व हो जाता है कि मीडिया को कुछ हद तक स्वतंत्रता देवे, जिससे वह अपनी उचित भागीदारी निभा सके तथा मीडिया का दिशाभ्रमित होते ही उसका सही मार्गदर्शन और निर्देशन अपेक्षित हो जाता है।

संदर्भ सूची

1. मीडिया विमर्श, रामशरण जोशी
2. मीडिया समकालीन सांस्कृतिक विमर्श, सुधीर पचौरी
3. जन माध्यम और भारतीय संस्कृति, धरवेश कोठरिया
4. मीडिया और हिन्दी साहित्य, राजकिशोर
5. हिंदी पत्रकारिता, महेन्द्र कुमार मिश्रा
6. 'मीडिया के मानक और लोग' विषय पर राष्ट्रीय मीडिया संवाद 12–14 मार्च, 2010 महेश्वर, मध्यप्रदेश

ग़ज़लें

अशोक मिजाज
मो. : 9926346785

आपके जैसा तो शृंगार नहीं कर सकते
हम बनावट को तो स्वीकार नहीं कर सकते
मैन टू मैन डिफर करता है नेचर अपना
सबसे हम एक सा व्यवहार नहीं कर सकते
अपनी हिन्दी में तो उर्दू भी है, अंग्रेजी भी
इस हक़ीक़त से तो इन्कार नहीं कर सकते
अपने दामन में न दौलत है न शुहरत कोई
इश्क़ है, इश्क़ का व्यापार नहीं कर सकते
वैसे पीने का हमें शौक नहीं है लेकिन
कोई ले आये तो इन्कार नहीं कर सकते
अपनी आवारा तबीअत से भी वाक़िफ़ हैं मिज़ाज
हम किसी से कोई इक़रार नहीं कर सकते।

उत्कर्ष अग्निहोत्री
कटरा नुनहाई, फर्रुखाबाद
उ.प्र. मो.–8874663158

1.
जब हुआ सच्चाई का इजहार वो
हादसों का बन गया अखबार वो
कोई हंगामा खड़ा होगा यहाँ,
कर रहा दुष्यन्त के अशआर वो
छत का जिस पे सबसे ज्यादा वज़न था
गिर गई है आज इक दीवार वो
लग गया है आज फिर दरबार वो
दूर से दीखा था जो प्रवचन भजन
पास आकर के दिखा बाजार वो
भागवत अनुराग की कैसे पढ़े
सुन रहा है वक्त का चीत्कार वो।

2.
इस तरह जीने का सामान जुटाता क्यूँ है
खर्च करना ही नहीं है तो कमाता क्यूँ है
ये घड़ी तो है प्रभाती को सुनाने की घड़ी
इस घड़ी मीठी सी लोरी को सुनाता क्यूँ है
चाहता है वो कोई काम कराना मुझसे
वरना मरने से मुझे रोज़ बचाता क्यूँ है
कौन देखेगा इसे किसको यहाँ फ़ुरसत है
एक कमरा है इसे इतना सजाता क्यूँ है
वक्त के शाह की तरीफ की खातिर 'उत्कर्ष'
सिर झुकाकर के तू ईमान गिराता क्यूँ है।

अमरेश सिंह भदोरिया
अजीतपुर, लालगंज, रायबरेली (उ.प्र.)
मोबाईल–9450135976

गुमनाम रिश्ते का भार ढो रहा हूँ
अपनी कामना का संसार ढो रहा हूँ
सुखद अनुभव का जो स्वप्न कभी देखा था
उस कीमती पल का इंतजार ढो रहा हूँ
सदियाँ गुजर गयी हैं लब पर हँसी न लौटी
आँसुओं का अब तक उपहार ढो रहा हूँ
निकलने से ही पहले जो नीलाम हो गयी है
उस सुबह की परछाईं के अधिकार ढो रहा हूँ
खामोश है समंदर और हवा भी ठहर गयी है
किश्ती में 'अमरेश' मैं पतवार ढो रहा हूँ।

आलेख

भूमंडलीकरण और मीडिया

रणजीत कुमार सिन्हा
प्राध्यापक हिन्दी विभाग खड़गपुर कॉलेज इन्दा खड़गपुर
(पश्चिम दिनाजपुर) मो.–9434153501

सोवियत संघ के विघटन के बाद वैश्वीकरण का दौर शुरू होता है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण आदि जिस नाम से पुकारे इसे फलने–फूलने एवं फैलाने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है। एक समय पत्रकारिता मिशन थी, भूमंडलीकरण युग ने मीडिया को कमीशन में बदल डाला। पत्रकारिता एक और युग का लेखा–जोखा करती है तो दूसरी ओर अपनी प्रतिवादी आवाज से यह साबित करती है कि सिर्फ समाचार तैयार करना ही उसका मकसद नहीं है। समाज के विचार पथ को आलोकित करके समाज को सही गलत का ज्ञान कराना पत्रकारिता का कार्य है। पर भूमंडलीकरण ने पत्रकारिता/ मीडिया के लिए अपनी कुछ खास शर्तों को ही लागू किया है, जो पत्रकारिता को मुनाफाखोरी या पूँजीवाद का दरबारी बना दिया है।

आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया केवल मुनाफा कमाने के लिए है। कारण भूमंडलीकरण की नीति विश्वग्राम में बदलने की है। मीडिया ही इसे हर स्तरपर लागू कर सकता है। भूमंडलीय करण सजाले, साहित्य, संस्कृति और उसके अधिकार को बर्बाद करने का प्रयास किया जा रहा है। बाजार आज हमारे बेडरूम से लेकर रसोई घर तक अपना अधिकार जमाए बैठा नजर आ रहा है। कुमुद शर्मा ने लिखा है–''भूमंडलीय मीडिया का उभार सहज और स्वाभाविक स्थितियों की देन नहीं है। बल्कि भूमंडलीय मीडिया के उभार की राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भूमंडलीय मीडिया के प्रवेश के पीछे भूमंडलीकरण के वाहकों को महत्वपूर्ण भूमिका रही है।''1 उन्होंने आगे लिखा है–''उच्च प्रौद्योगिक के युग में संचार क्रांति ने संचार माध्यमों के बहुआयामी स्वरूप को उपस्थित कर परंपरागत संचार माध्यमों की पृष्ठभूमि में धकेल कर उनके स्थान पर हाइटेक और सुपर स्पीड वाले संचार माध्यमों को स्थापित कर दिया है।''2

सच्चिदानंद सिन्हा ने औद्योगिक पूँजीवादी और उसकी उपभोक्तवादी पूँजी के संदर्भ में लिखे हैं–''भूमंडलीकरण के नाम अब औद्योगिक पूँजी, व्यवस्था और उसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को संसार के उन भोगों पर लादने का प्रयास हो रहा है, जहाँ अभी तक पारंपरिक या गैर पूँजीवादी व्यवस्था थी। अपनी हित रक्षा में अपने चरित्र के कारण पूँजीवादी कहीं भी अनियोजित विकास ही करता है, उससे क्षेत्रीय विषमताएँ उभरती हैं और जहाँ भी इसका पैर पड़ता है, वहाँ सम्पन्नता और विपन्नता के ध्रुवों में अंचलों और समूहों का विभाजन होता है। इससे हर जगह आंचलिक या समूहों के बीच संघर्ष उभरता है। छोटी खेती और किसानों के बीच संघर्ष उभारते हैं। छोटी खेती और किसानों का अस्तित्व समाप्त होने लगता है और विशाल पैमाने पर बेरोजगारी फैलती है।''3

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास देखने से पता चलता है कि आजादी के समय हिंदी पत्रकारिता किस तरह प्रतिपक्ष की भूमिका निभाती है। हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय समाज को जोड़ने का कार्य किया था। भारत के सांस्कृतिक समन्वय को स्थापित करने के लिए हिंदी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आजादी के बाद पत्रकारिता की दशा व दिशा में बदलाव दिखने लगा और इंदिरा युग में पत्रकारिता तो प्रायः प्रतिबंधित हो चुकी थी। आठवें दशक का समय हिन्दी पत्रकारिता ही नहीं भारतीय पत्रकारिता या मीडिया के लिए कलंक का काल रहा है। 1991 की उदारनीति ने पत्रकारिता को व्यापार में बदल डाला–''भूमंडलीकरण के इस युग में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में मीडिया की भूमिका का एक तरह से एकीकरण हो गया है। मीडिया अगर किन्हीं व्यापारिक हितों की पूर्ति कर रहा होता है, तो साथ ही एक विचारधारा का प्रचार कर रहा होता है और इस व्यवस्था के तमाम उत्पादों के लिए बाजार का विस्तार भी करता है।''4

भूमंडलीकृत समय में हमारी जीवन शैली किस तरह बाज़ारबाद से प्रभावित हो रहा है। आज हमें स्वतंत्र चिंतन करने का समय नहीं है, प्रचारतंत्र ने हमें अपने वश में कर रखा है। भूमंडलीकरण का वाहक बना मीडिया अंग्रेजी शब्दों में भरमार से निर्मित एक नयी हिन्दी को परोस रहा है। मीडिया में जिस तरह की हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, उसे लेकर हिन्दी प्रेमी चिंतित है। चिंता हिन्दी की है, उस हिन्दी की जिसे हमारा समाज उपयोग करता है। भूमंडलीकृत मीडिया हिंग्लिश का चाट सबके चटा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया दोनों ही विकृत हिंदी भाषा का जमकर प्रयोग कर रहे हैं। चूँकि मीडिया भूमंडलीकरण का प्रमुख वाहक है, अतः भाषा बाजारू बनती जा रही है। नामी गिरामी अखबार भी इस बाज़ारू भाषा का प्रयोग जमकर कर रहे हैं और इसे अपना आदर्श मान रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति ने अध्ययन, चिंतन, मनन और मौलिक लेखन का समय छीनकर लोगों को संवेदनाशून्य बना दिया है। क्षेत्रीयता की प्रभुता कायम करने हेतु। भाषा को बाजारू रूप देने के पीछे भारत के बड़े पूँजीपति, औद्योगिक घराने, अवसरवादी राजनेता तथा बिके हुए बुद्धिजीवी भी शामिल हैं। हम यह मानने को तैयार नहीं कि भाषा ने बाजारू रूप ले लिया है तथा हम हिंग्लिश या विकृत हिन्दी का प्रयोग गर्व के साथ करते हैं।

भूमंडलीकरण मीडिया के उभार ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के चरित्र को बदलते हुए इसे उपभोक्तावादी संस्कृति का वाहक बना दिया है। भूमंडलीकरण के एजेंडे के तहत हिन्दी के अखबार भी अंग्रेजी के प्रचार में कम पीछे नहीं है। अब तो कई लोकप्रिय हिन्दी अखबारों ने अपना प्रकटित नियम बना लिया है कि उनकी रिर्पोटिंग में 20 से 30 प्रतिशत अंग्रेजी के शब्द होने ही चाहिए।

भूमंडलीकरण हमें भाषाई स्तर पर भी गुलाम बनाने का मुहीम चला रहा है। भाषाएँ समाप्त होंगी तो संस्कृतियाँ भी समाप्त हो जाएँगी और साथ ही हमारी अस्मिता भी। दरअसल भूमंडलीकरण समय में मीडिया समाचार की जगह भाषाई संस्कृति को विकृत कर रही है। आज मीडिया चाहे प्रिंट हो या इलेक्ट्रॉनिक धार्मिक उन्माद और प्रवचन परोसने में होड़ लगा रही है। मीडिया के वर्तमान चाल–चलन हमें मध्ययुगीन बर्बरता की ओर ले जा रही है। प्रचारतंत्र विज्ञापन के नाम पर कामोत्तेजक जापानी तेल, रॉकेट कैप्सुल, फलेवर कंडोम का प्रचार–प्रसार हो रहा है। आजकल समाचार पत्रों में समाचार कम विज्ञापन अधिक है। मीडिया ने स्त्री की छवि को अति धूमिल कर दिया है। नारी सशक्तिकरण के नाम पर नारी को एक

पण्य वस्तु में बदलता नजर आ रहा है।

एक तरफ भूमंडलीकरण समय में सूचना विस्फोट हुआ है तो साहित्य एवं संस्कृति को सबसे अधिक कलूषित मीडिया ही कर रहा है। किसानों की मौत, बेरोजगारी, बदहाल शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा की जगह नायक–नायिकाओं की गर्भ धारण का समाचार प्रचारित–प्रसारित होते दिखलाई पड़ रही है। पेड़ न्यूज का इतना बोलवाला है कि आज मीडिया पर भरोसा करना मुश्किल है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण समय में मीडिया समाज में जागरूकता के बजाय कामरूपता परोस रही है।

संदर्भ –
1.स्वाधीनता शारदीय विशेषांक, 2017, पृ0 119
2.वही, पृ0 119–120
3.वही, पृ0 118
40 वही, पृ0 121

कविताऐं

याद है मुझे

–शशिकला झा,
वीरपुर, सुपौल
9471658607

याद है मुझे
देखा था हमने
'सुसंभाव्य' के प्रांगण में
संभावनाओं के मिलन को

मैं मिथिलापुत्री
पहुँची थी उस प्रांगण में
जहाँ गीत थे, रीत थी
उल्लास था,उत्थान था
अनगिनत संभावनाओं के बीच
अहं का अवसान था

जिस अपनत्व को
महसूस किया हमने
उसे क्या नाम दूँ

अंगप्रदेश की जमीं से मेरा
प्रथम परिचय था
कितने सारे बुद्धिजीवी
जिसमें संपादक
जायसवाल सर की सरलता
मंत्रमुग्ध थे हम उनकी
विनम्रता को
देखा था उस दिन
संपादकीय के तो
कब से कायल थे हम

बहुत–बहुत धन्यवाद
अंगप्रदेश के समस्त लोग
बुद्धिजीवी, जायसवाल जी
मुझ मैथिलपुत्री को
सम्मान दे आपने, हमपे
एक सांस्कृतिक एहसास किया
जहाँ कई प्रदेशों का
मिलन–पर्व हुआ
'सुसंभाव्य' ने ही उस दिन तो
एक बौद्धिक सेतु का
निर्माण किया।

बदलता जीवन

रविशंकर सिंह
सालडंगा वरदेही रोड,
रानींगज, वर्द्धमान
9851605462

फोन पर
पत्नी का खाने के लिए पूछना
अच्छा लगता है
मधुर लगती है आवाज
कितना अजीब हैं
एक छत के तले
परस्पर फोन पर संवाद
लाओस से नतनी पल में पूछ लेती है
क्या कर रहे हो नानू
कह नहींसकता
मोबाईल फोन ने
हमारी बीच दूरियाँ
बढ़ाई या घटाई है
एक ही छत तले
आमने–सामने
हमारे हाथों में
होता है
अपना–अपना मोबाईल फोन
होती है
अपनी–अपनी
दुनिया
हम रहते हैं बेखबर
अपरिचित

महीनों–बरसों
अपने पड़ोसियों के
सुख–दुख से।
अकेला नहीं हूँ मैं
बचपन में माँ गुजरी
जवानी में पिता
सौतेली माँ की परवरिश में
क्या बताऊँ जीवन कैसा बीता
अपने और सौतेले भाइयों से
कैसे मैंने रिश्ता साधा
बेटे–बहुएँ, बेटी–दामाद
रहते हैं दूर देश में
रोजी–रोटी की तलाश में
सबका अपना जीवन है
जीने का अपना अंदाज है
मैं भी जी रहा हूँ
अपनी शर्तों पर
अपना जीवन
पूछते हैं लोग जब
कैसे रहते हैं आप दंपति
घर में अकेले?
कैसे समझाऊँ मैं उन्हें
समाज में रहते हुए
भला कोई कैसे रह
सकता है अकेला

आलेख

सरदार अजीत सिंह

डॉ. ऊषा निगम
कानपुर
मो.–9792733777

(23 फरवरी 1881 से 15 अगस्त 1947)

पंजाब पुत्र सरदार अजीत सिंह का राजनीतिक कार्यकाल संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण रहा। उन्हीं कुछ वर्षों में वे वहाँ तूफान की तरह छा गये और फिर अपने उग्र विद्रोही विचारों की आँच को छोड़कर एक लंबी अवधि के लिए अपने पराधीन देश की सीमाओं से परे दूर चले गये। यह भी कैसा विचित्र संयोग है कि वे भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिलने की खबर के साथ 14 मार्च, 1947 को स्वदेश वापस आये। 14 अगस्त, 1947 की मध्य रात्रि को जब भारत की आजादी की घोषणा हो चुकी थी, सवेरे चार बजे सरदार अजीत सिंह ने अपने परिवार के बीच कहा–''मेरी जिंदगी का मकसद पूरा हो गया, अब मैं जा रहा हूँ।'' और उसके थोड़ी देर बाद 'जय हिन्द' कहते हुए वे चिर निद्रा में विलीन हो गये।

उनका जन्म 23 फरवरी 1881 को खटकड़कलाँ, जालंधर में हुआ था। सरदार अर्जुन सिंह व सरदारनी जय कौर की वे दूसरी संतान थे। सिख होते हुए भी उनके पिता सरदार अर्जुन सिंह घोर आर्य समाजी थे। पंजाब में वह आर्य समाज का दौर था। आर्य समाज का अर्थ था धार्मिक और सामाजिक क्रांति, अतीत की गौरवशाली संस्कृति पर अभिमान व स्वदेश प्रेम। भारतीय राजनीतिक परिवेश भी बदल रहा था। 1857 की सशस्त्र क्रांति के बाद देश को स्वाधीन करने की अभिलाषा का पुनः जन्म हो रहा था। 1905 के बंगाल विभाजन ने बंगाल के एक नवीन राजनीतिक चेतना को जन्म दिया। जागृत के इस तूफान ने पंजाब को भी प्रभावित किया। स्वयं पंजाब की अपनी स्थिति भी शांतिपूर्ण नहीं थी। भूमि स्वामित्व संबंधी कुछ कानूनों ने आबियाना (जल कर) में वृद्धि तथा कोलोनाइजेशन बिल के कारण पंजाब में असंतोष फैल रहा था, जिसका प्रधान कारण आर्थिक था और पंजाब का खेतिहार किसान वर्ग इससे बहुत प्रभावित था।

सरदार अजीत सिंह ने 1894 में मैट्रिक की परीक्षा पास की, फिर लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में प्रवेश लिया। यहीं से उनमें राजनीति के प्रति रुझान आरंभ हुआ। 'युग द्रष्टा भगत सिंह' की लेखिका वीरेन्द्र सिन्धु के कथनानुसार सरदार अजीत सिंह का लक्ष्य गुप्त क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेना नहीं था, वरन उनका 'लक्ष्य तो 1857 था और उनका कार्य खुली बगावत का गुप्त संगठन था।' 1903 में लॉर्ड कर्जन ने अंग्रेज सरकार की शक्ति और भव्यता को प्रदर्शित करने के लिए दिल्ली दरबार का आयोजन किया, जिसमें देश के तमाम नरेशों और नवाबों को आमंत्रित किया गया था। इस अवसर का लाभ उठाकर अजीत सिंह ने नरेशों और नवाबों से भेंट की थी और उनको 1857 जैसी क्रान्ति के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया थ। बंगाल यात्रा के समय उनका संपर्क कुछ बंगाली क्रान्तिकारियों से भी हुआ था। सहारनपुर के क्रांतिकारी जतीन्द्र मोहन चटर्जी (निरालंब बाबा) से भी उनकी हुई थी, किन्तु वे किसी गुप्त संगठन के सहभागी नहीं बने।

1906 के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में सरदार अजीत सिंह की भेंट उग्र विचारधारा के पोषक लोकमान्य तिलक से हुई। तिलक का उनपर विशेष प्रभाव पड़ा। वे कलकत्ता से प्रकाश्य आंदोलन का संकल्प लेकर वापस आये। उन्होंने निर्णय लिया कि वे पंजाब के किसानों के असंतोष को सही दिशा और नेतृत्व देंगे। क्रांतिकारी सूफी अम्बा प्रसाद के सहयोग 'भारत माता सोसाइटी' की स्थापना की। सरदार किशन सिंह तथा स्वर्ण सिंह 'अजीत सिंह के भाई', लाला लालचंद फलक, मेहता नंद किशोर, लाला हरदयाल, केदारनाथ सहगल, लाला पिंडी दास, महाशय घसीटा राम आदि इसके प्रमुख सदस्य थे। 'भारत माता सोसाइटी' के दो शस्त्र थे–पहला भाषण और दूसरा प्रकाशन। सूफी अम्बा प्रसाद पर प्रकाशन का दायित्व था, जिसलिए उन्होंने 'भारत माता बुक एजेंसी' स्थापित की। तमाम पत्र–पत्रिकाओं, ट्रैक्टस, पुस्तकों के माध्यम से राजद्रोहात्मक साहित्य का प्रकाशन किया गया।

भारत माता सोसाइटी की ओर से जगह–जगह तमाम सभाओं का आयोजन किया जाने लगा, जिसमें भाषण देने का दायित्व सरदार अजीत सिंह पर रहता था। 1907 के पंजाब के किसान आंदोलन को उनका कुशल नेतृत्व मिला। पूरे पंजाब के शहरों और गाँवों में सभाओं की बाढ़ सी आ गई, जिनमें बड़ी सख्या में जाट किसान तथा समाज के अन्य वर्गों के लोग भी भाग लेते थे। उनके भाषण अंग्रेजी राज्य के शोषण, अत्याचारों और दमन के खिलाफ होते थे। मार्च 1907 में लाहौर में आर्य सेवक होटल के मैदान में होनेवाली सभा में सरदार अजीत सिंह ने न्यू कोलानाइजेशन बिल का विरोध किया। उसे वापस लेने की माँग करते हुए चेतावनी दी कि 'दो माह के अंदर ऐसा न हुआ, तो हम कोई टैक्स नहीं देंगे। इस देश की लूट–खसोट को अब बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। हममें से हर एक सिर पर कफन बाँधे खड़ा है।' उस सभा की चर्चा करते हुए 'इंडिया' पत्र के संपादक लाला पिंडी दास ने, जो सभा में मौजूद थे, लिखा था–''... सरदार जी सरकार के अत्याचारों की कहानी कुछ इस अंदाज में कहते थे कि लोग दहाड़ें मार–मारकर रोने लगते थे।'' वंदे मातरम् की गूँज के साथ जलसा समाप्त हुआ था।

22 मार्च को भारत माता सोसाइटी के लायलपुर में सभा हुई, जिसमें 8000 श्रोता थे। इस सभा में लाला लाजपत राय आये थे। इसी सभा में भारत माता सोसाइटी के कार्यकर्ता बांके दयाल ने अपनी एक कविता पढ़ी थी, जो बहुत प्रसिद्ध हुई। प्रायः अन्य सभाओं में भी उन्हें स्वयं इसी कविता पाठ के लिए जाना पड़ता था। कविता इस तरह थी–

''पगड़ी संभाल ओ जट्टा, पगड़ी संभाल ओ
मांझे दे जोरनाल और मालवे दे शोर नाल
कदी नइयों हारना।''

इस कविता की लोकप्रियता के कारण इस किसान आंदोलन का नाम ही 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' पड़ गया था।

इस सभा की एक विशेष बात और थी। इनमें प्रायः सिख सैनिक भी उपस्थित रहते थे। मुल्तान की 18 अप्रैल की सभा में 200 सिख सैनिक मौजूद दे। अंग्रेजी सरकार के लिए अत्यंत संकटपूर्ण स्थिति थी, विशेष रूप से पंजाब सरकार के लिए। 10 मई को 1857 की पचासवीं वर्षगाँठ आनेवाली थी। ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के पास यह खबर थी कि सरकार अजीत सिंह उसी विद्रोह की अगली शृंखला की तैयारी में थे। गुप्तचर विभाग ने 5 मई, 1907 को अपनी एक विस्तृत रिपोर्ट में कहा था कि अजीत सिंह लोगों को अंग्रेजों का वध करने के लिए भड़का रहे हैं, वे लोगों को तथा सेना को बगावत के लिए उत्तेजित कर रहे हैं, राजद्रोहात्मक पर्चे बाँटे जा रहे हैं। रिपोर्ट में कहा कि 'अजीत सिंह ही इन सबके नेता हैं।'

पंजाब सरकार की घबराहट स्वाभाविक थी। पंजाब के गर्वनर इब्टसन ने वाइसराय के लिखा गया 'पंजाब में गदर होनेवाला है और उसका नेतृत्व सरदार अजीत सिंह और उनकी पार्टी करेगी। बगावत को रोकने का प्रबंध करें।' 1818 के रेग्यूलेशन तीन के अंतर्गत 9 मई को लाला जी को और 3 जून को सरदार अजीत सिंह को मांडले (वर्मा) भेज दिया गया। लाला लाजपत राय के निर्वासन का तीव्र विरोध हुआ, जिसके कारण अंग्रेज सरकार उन्हें छोड़ने के लिए विवश हुई और साथ में सरदार अजीत सिंह को छोड़ना भी सरकार की एक विवशता रही। सरकार ने कोलानाइजेशन ऐक्ट वापस ले लिया। यह किसान आंदोलन की और स्वयं अजीत सिंह की भारी सफलता थी।

मांडले से वापस आकर सरदार अजीत सिंह पुनः भारत माता सोसाइटी के लक्ष्यों के प्रति समर्पित भाव से काम करने लगे। राजद्रोहात्मक साहित्य की रचना होती रही। 'पेशवा' नामक दैनिक पत्र की उस समय 1500 प्रतियाँ छपती थीं। उन्होंने भाषा कोड की रचना भी की थी, जिसकी मदद से देश–विदेश के मध्य गुप्त संदेशों का आदान–प्रदान हो सके।

इसी समय सरदार अजीत सिंह ने लाला हरदयाल, सरदार किशन सिंह, सूफी अम्बा प्रसाद तथा अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर देश को आजाद करने की योजना बनाई। यह योजना इस प्रकार थी–1. लाला हरदयाल अमरीका, सूफी अम्बा प्रसाद अफगानिस्तान–ईरान तथा निरंजन सिंह ब्राजील जायें और उन देशों में भारत के पक्ष में वातावरण बनायें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर भारत को विदेशों से मदद मिल सके। 2. सरदार अजीत सिंह देश में रहकर तमाम क्रांतिकारी संगठनों से संपर्क स्थापित करके एक मजबूत, प्रभावशाली क्रान्ति दल का निर्माण करें और 3. जब प्रथम विश्व युद्ध आरंभ हो तब यूरोप में ब्रिटेन के युद्ध में व्यस्त होने के कारण उस परिस्थिति का लाभ उठाकर भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध विशाल स्तर पर क्रान्ति का आयोजन किया जाए।

एक ओर सरदार अजीत सिंह और उनके साथियों की गतिविधियाँ चल रही थीं,दूसरी ओर सरकार को पुनः उनके खतरनाक इरादों की रिपोर्ट मिल रही थी। उनके विरुद्ध वारंट निकाला जाए, उन्हें बंदी बनाकर कैसे कठोर दंड दिया जाए, सरकार की ओर से इसका प्रयत्न हो रहा था। उनके बड़े भाई अपने सूत्रों द्वारा सरकार की खबर रखते हैं। भाई के लिए संकट देखकर उन्होंने सरदार अजीत सिंह को विदेश चले जाने का परामर्श दिया। 1909 में सरदार अजीत सिंह ने सूफी अम्बा प्रसाद तथा कुछ अन्य साथियों के साथ अपने देश की धरती से विदा ली। इस प्रकार सरदार अजीत सिंह के जीवन का एक अध्याय समाप्त होता है। राजद्रोहात्मक साहित्य को आधार बनाकर सरदार किशन सिंह, लाला लालचंद फलक, जिया उल हक (पेशवा के संपादक) मुंशी राम और नंद गोपाल को दंडित किया गया।

सरदार अजीत सिंह के जीवन का दूसरा अध्याय बहुत लंबा, संघर्ष पूर्ण और कष्टों से भरा रहा। लेकिन देश की आजादी के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहने के जज्बे का कभी अंत नहीं हुआ। यह सफर कराची से समुद्र तट से आरंभ हुआ। ईरान, तुर्किस्तान, शीराज, टर्की, बर्लिन, उनकी यात्रा के पड़ाव रहे। इस दौरन वे लगातार अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों के संपर्क में रहे और भारत के गदर आंदोलन के आयोजन में अपने स्तर से प्रयत्नशील रहे। 1916 में उन्हें अनुमान हो गया था कि मित्र राष्ट्रों को अमेरिका का साथ मिलते ही युद्ध का परिणाम जर्मनी के पक्ष नहीं होगा, अतः वे 1916 में ब्राजील चले गये। 1932 में फ्रांस आए और फिर जर्मनी। जर्मनी में उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस से मिलकर देश के आगामी कार्यक्रमों पर चिंतन किया। इटली में मुसोलिनी से भी मिले।

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हुआ। उस समय सरदार अजीत सिंह ने रोम रेडियो से भारत के लिए तथा यूरोप स्थिति ब्रिटिश फौजों के भारतीय सिपाहियों (जिनकी संख्या बहुत थी) के लिए अनेक रेडियो प्रसारण किए। इस बीच सुभाषचन्द्र बोस ने उनके संपर्कों का लाभ उठाया। सरदारजी ने 'आजाद हिंद लश्कर' का संगठन किया, जिसका मुख्य उद्देश्य युद्ध में आत्मसमर्पण करनेवाले भारतीय फौजियों को लश्कर में भर्ती करना था। आगे चलकर उन्होंने अपने लश्कर के फौजियों को बोस की आजाद हिंद फौज के लिए भी भेजा। 8 अक्टूबर, 1943 को युद्ध में इटली की पराजय हुई। हालत बदल चुके थे। अंततः 2 मई, 1945 को अंग्रेजों ने सरदारजी को बंदी बना लिया।

भारत में 1938 में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बनते ही सरदार अजीत सिंह को देश वापस बुलाने का आंदोलन आरंभ हो गया लेकिन कागजी कार्यवाही के अपूर्ण रहने के कारण यह संभव नहीं हो सका। 1946 में जब कृष्णा मेनन रूस गये, वहाँ उन्हें आजाद हिंद फौज के नेता गिरजा मुखर्जी से सरदारजी के यातना पूर्ण जीवन एवं उनके जर्जर स्वास्थ्य की खबर मिली। नेहरूजी ने वायसराय पर दबाव डाला। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप वे मार्च 1947 को बंदी जीवन से आजाद होकर लाहौर पहुँचे। 1 अप्रैल, 1947 को उन्होंने देश के लिए अपना ओजपूर्ण और सारगर्भित संदेश प्रसारित किया। उन्होंने आपसी भाईचारे को आधार बनाकर आजादी के इस स्वर्णिम अवसर से वर्तमान और भविष्य संवारने का आह्वान किया। उन्होंने कहा–'अपने मुल्क के शहीदों को कभी मत भूलो, जिन्होंने वतन की शान की खातिर देश के अंदर और बाहर भारत माता के नाम पर अपनी जानें कुर्बान कीं। उनके नक्शेकदम पर चलो; क्योंकि शहीदों की अमवाल (मौतें) कौमी हयात (जातीय जीवन) का वायस (कारण) हुआ करती है।

इसके बाद स्वागत समारोहों का लंबा सिलसिला चला। पंजाब ने उन्हें सिर आँखों पर बिठाया। लेकिन देश बंट चुका था और इस बँटवारे ने उन्हें तोड़ दिया था। उनके जीने की इच्छा समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने इच्छा मृत्यु का वरण किया और इस प्रकार उनके जीवन के दूसरे अध्याय का सदा सदा के लिए अंत हो गया।

सामाजिक शोध आलेख

सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश
नारी के लिए मृगतृष्णा

सुभाष चन्द्र झा
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
संयुक्त आयुक्त–सह–सचिव,
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमण्डल, भागलपुर–812002
9431208428 7546022022
subhasjha58@gmail.com

क्या सचमुच नारी परमात्मा की छाया है, प्रतिबिम्ब है, विराट प्रकृति है?सचमुच स्त्री में सृष्टि समाहित है?सब से ज़्यादा सर्षष्टि के नज़दीक तो स्त्री ही है! स्त्री का प्रेम जितना बड़ा और ग़हरा है, उतना पुरूष का हो नहीं सकता! स्त्री–पुरूष दोनों अपने– अपने ध्रुवों पर हैं! एक उत्तर ध्रुव में है, एक दक्षिण ध्रुव में। जब तक दोनों एक धरातल पर नहीं आएंगे...जब तक दोनों के बीच अंडरस्टैडिंग नहीं होगी, तब तक...कोई सरग़म नहीं उत्पन्न हो सकेगी। स्त्री और पुरूष दोनों एक युग्म हैं! स्त्री अपने–आप में ही सम्पूर्ण है, स्त्री की दुनिया अपने सच को पाने की दुनिया है। जीवन के आंतरिक सच का अनुभव है। एक विराट की अनुभूति है।

स्त्री में कुछ ज़ादू ज़रूर भरा है, जिससे क्षण–भर में बिज़ली की तरह स्पर्श करती निकल जाती है और वह स्पर्श जैसे ठहर कर रह जाता है सारी उम्र! स्त्री में एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है! पुरूष को अनुमान व कल्पना के भरोसे छोड़ कर वह जाने कहां पलायन कर जाती है! पुरूष यदि चाहे कि इस सर्वोच्च आनंद का उपभोग मैं पूर्णरूप से करूंगा, तो वह ऐसा कभी नहीं कर सकता! किसी एक भाव को हृदयंगम कर या किसी एक प्रसंग की मधुरता का आस्वादन करके ही उसे संतोष मानना पड़ेगा! संपूर्ण स्त्री का पूरा–पूरा स्वाद वह कभी ले ही नहीं सकेगा! साथ ही उसकी यह आनंदानुभूति स्थायी नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री का सहज स्वभाव बिज़ली की तरह लुकने–छिपने का है! स्त्री में तारतम्य और ज़वां माधुर्य का ऐसा स्त्रोत बहता है कि उसमें पुरूष तल्लीन होकर रह जाता है! सौंदर्य का ज़ादू अपने ज़ाल में बेतरह समेट लेता है। स्त्री एक मायापुरी की सृष्टि है। स्त्री का रहस्य धीरे–धीरे ही मालूम होता है और अंत में मालूम होता है– किसी सुख–स्वप्न की तरह!

संसार के सारे प्रसिद्ध महाकाव्यों, ऐतिहासिक कथाओं, पुराणों के मूल में प्रेरक प्रेरणा–सूत्र या कारण के रूप में कोई–न–कोई स्त्री ही विद्यमान है । सुन्दर, सुलक्षणा, सच्चरित्र स्त्री एक मानव की सर्वश्रेष्ठ कामना होती है । स्त्री के रूप, सौन्दर्य, आकर्षण में बंधा कोई पुरूष उसे प्राप्त करने, अपनाने और सहवास के लिए कुछ भी कर सकता है ।

प्रत्यक्ष रूप से स्त्री साहित्य, संगीत, कला, चित्रकला व मूर्त्तिकला की सजीव साकार स्वरूप होती है । स्त्री का लावण्य, नज़ाकत, सौन्दर्य, माधुर्य तथा आकर्षण मनुष्य को सौ–सौ बार जीने व मरने को उद्यत करता है । स्त्री इस असार संसार का एक मात्र सार तथा विधाता की सर्वोत्तम कषति है। स्त्री के नयनों में मदिरा, अमृत तथा विष तीनों ही भरेपूरे होते हैं। जिसका जैसा भाग्य हो, वैसा फ़ल मिलता है।स्त्री की आंखों की तुलना हिरण, मछली, खंजन, बादाम, कंवल आदि से की जाती है तथा ग़हराई को समन्दर कहा जाता है।

स्त्री अपनी आंखों की मौन भाषा में हज़ारों की भीड़ में भी चुपके–चोरी से बहुत कुछ कह जाती है। स्त्री का पूरा चेहरा चंद्रमा जैसा, ग़र्दन हंस एवं शंख़ जैसी, वक्षों में मंदिर के स्वर्णकलश, पके अनार, सोने के नोकदार कटोरे, छोटी पहाड़ी, टीले, हिरणी के नये नुकीले सींगों और सीने में छिपे कबूतरों के रूप में तुलना की जाती है । स्त्री अपने रूप–गुण–सौन्दर्य–यौवन, कलात्मकता, आचरण, व्यवहार से सारी दुनिया को सहज ही अपने नियंत्रण में कर सकती है।

स्त्री के यौनांगों में उसका सारा शरीर ही सुख़, आनंद और आकर्षण की खान तथा अमृतरस भरा कलश है। उसके कपोल, अधरोष्ठ, उरोज, नाभि, योनिप्रदेश, कमर, जघनप्रदेश, कंधे, कलाई केशराशि तथा नितम्बप्रदेश कामरसिकों के सर्वाधिक आकर्षण के क्षेत्र हैं। स्त्री का स्वर संगीत की झंकारयुक्त मीठा व धीमा, कपोलों तथ होठों का रसपूर्ण होना, लोमविहिन तन, अगं भीर तथा उन्मुक्त स्वभाव, भावनाप्रधान होना, उरोजों तथा नितम्बों की पृथुलता ख़ासियत लिए होती है। हावभाव, नाज़ोअदा, रूपसौंदर्य का लावण्य, संकेतपूर्ण कामचेष्टायें, लुकाछिपी, लज़ाने, इतराने का स्वभाव विशेष रूप से आकर्षित करता है।

नीतिशास्त्र के अनुसार–रूपं नास्ति वयं नास्ति प्रार्थयिता नरः। एकांते च गृहं नास्ति तेव नारी पतिव्रता।। स्त्री अगर रूपवती न हो, युवती न हो, कोई चाहनेवाला प्रेमी पुरूष न हो, एकांत में मौक़े की जगह न हो तो ही नारी पतिव्रता रह सकती है। स्पष्ट है कि स्त्री प्रेम के लिए उपयुक्त निरापद वातावरण तथा निर्भयता और निश्चिंता का होना ज़रूरी है।

स्त्री के लिए शुद्ध और सात्विक प्रेम में कुछ भी अप्रिय, ग़लत या असंगत नहीं होता। हाव–भाव, अनुभाव सहित कुल 27 प्रकार के मधुर रागात्मक और कामोत्तेजक संचारी भाव के दर्षन स्त्री में रति–समागम के अवसर पर कामातुरा अवस्था में स्वतः परिलक्षित होने लगते हैं । एक ब्रह्मचारी गुह्यज्ञान अभिशेक को नहीं प्राप्त कर सकता । स्त्री अपना वास्तविक सत्य खुलकर किसी को नहीं देती। सिर्फ़ इशारे–मात्र ही कर सकती है और अपनी इच्छा एवं स्थिति को संकेतों में उघाड़कर रख सकती है । नारी घनी छाया से भरी है, लेकिन पुरूष ही उसके नीचे विश्राम न करें तो छाया कुछ भी न कर पाएगी, छाया स्वयं चलकर पथिक के पास नहीं पहुंचेगी । सरोवर में जल भरा है लेकिन प्यासे की प्यास बुझाने को सरोवर स्वयं चलकर नहीं पहुंच सकता, प्यासे को ही चलकर सरोवर के पास पहुचंना होता है । प्रेम और सौन्दर्य का घनिष्ठ संबंध है, प्रेम के बिना सौन्दर्य की परिणति संभव नहीं । प्रेम बांधता है पर यह बंधन सुखद होता है, जिसमें बंधने के लिए हृदय व्याकुल होते हैं । प्रेम

अपनी जगह है और दुनिया के सारे गोरखधंधे अपनी जगह। अपनी–अपनी प्रकृति का सहज़ स्वाभाविक स्वाद तो किसी प्रकार किसी भी नर–मादा से छूट ही नहीं सकता है ! सच है कि समय पलटने से परिस्थिति, देश, काल, पात्र के अनुरूप नर–मादा की स्वाभाविक प्रकृति–प्रवृत्ति भी पलट जाती है और ऐसे में कौन अपनी प्राकृतिक चाल नहीं त्याग देता !

स्त्री का प्रेम ग़हरे सागर जैसा और पुरूष का प्रेम छोटे चम्मच जैसा। चम्मच से सागर नहीं नापा जा सकता। इतने छोटे–से चम्मच से इतना बड़ा सागर नाप नहीं सकते। कोई नाप नहीं सका। नापने की ज़रूरत नहीं है। सागर में डुबकी लेना, सागर की लहरों पर तैरना–यही आवश्यक है। नौका सागर में छोड़ना है। सागर की पुकार अज्ञात की पुकार है। जितना समझ सकता है कोई, उतना ही ज़्यादा शेष है समझने को। समझा तो नहीं जा सकता है, मगर ज़ीया जा सकता है। जीने का रास्ता है, समझने का नहीं। और प्रेम का जानने से क्या संबंध ?प्रेम जानता नहीं, प्रेम निर्दोष है। प्रेम ज्ञान से मुक्त है। ज्ञान का कचरा प्रेम नहीं ढ़ोता। जो ज्ञान का कचरा ढोते हैं, उनके जीवन में कभी प्रेम के फूल नहीं खिलते। बुद्धि तो ऊपर–ऊपर है, क्योंकि कचरा है। हृदय बहुत ग़हरे में है। पुरूष मन है और स्त्री हृदय। तय करना मन की क्षमता नहीं। मन कभी तय नहीं कर पाता। मन तो सोचता ही रहता है, संशय में, डावांडोल रहता है। मन सोचने–विचारने में ही समय गंवा देता है। अगर मन की आंख से कोई प्रेम करने चले, तो प्रेम होगा ही नहीं। निर्णय सदा हृदय से आते हैं। मन तो कैंची है, काटता है। हृदय सुई–धागा है, जोड़ता है। मन है संदेह जो खंड–खंड करता है। हृदय है परिपूर्ण छलांग, सोच–विचार का समर्पण। मन तो सदा भिखारी है, हृदय है दाता। पुरूष है उपद्रव, स्त्री है परम शांति–संतोष, प्रगाढ़ आनंद।

स्त्री कैसे और किन–किन रूपों में हमारे जीवन, प्रेम और सहज संतुलन के लिए अनिवार्य है! वह जीवन पर फ़ैली हुई मसृण चांदनी और स्वप्नों की प्रतिमा है। कोमल मृदुल मोहिनी आकर्षक ही सदैव बनी रहती है। नारी प्रकृतिमयी और प्रकृति नारीमयी है! उसमें प्रेम की पवित्रता है, पावनता है जो गंगाजल में होती है! त्रिवेणी की लहरों में जो संगीत है, वही संगीत नारी की वाणी में है। स्वतंत्रता और समानता का कोई संबंध सौदर्य से नहीं! सच ही कहा गया है कि सौदर्य नहीं, तो नारी नहीं! त्याग, स्वाभिमान, सौदर्य, प्रणय से परिपूरित है। जीवन में वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक संदर्भों से जुड़ी होती है स्त्री। स्त्री के बिना पुरूष अधूरा, अल्प, अपूर्ण, अतृप्त–सा, कुछ प्राप्त करने की तलाश में भटकता रहता है। आधुनिक समय में संस्कार, मूल्य, संबंध, चरित्र सब अपना अर्थ खो चुके हैं। आदमी अक्सर पशु के क्षेत्र में प्रवेश करता नज़र आता है, जहां प्रेम की नहीं, वासना की सत्ता होती है।

स्त्री अपने–आप में ही पूर्ण–परिपूर्ण–सम्पूर्ण और तृप्त होती है! उसका होना ही स्वयं में पर्याप्त है! प्रणय की खुशबू में नहाई स्त्री आकाश–पाताल के बीच की दूरी पलभर में लांघ सकती है!

स्त्री–पुरूष दोनों की भाषा, शब्दावली, एप्रोच, व्याकरण बड़ी अलग है। क्रिया–प्रतिक्रिया, तन–मन की बुनावट, सोच–विचार, व्यवहार–आचरण बड़ी विपरीत है, एक–दूसरे से एकदम भिन्न! दोनों चुम्बक के दो विपरीत ध्रुवों की तरह होते हैं! प्रकृति ने दोनों की भूमिकाएं अलग–अलग निर्धारित की हैं–एक–दूजे के सहयोगी और परस्पर परिपूरक रूप में! इसलिए अंतिम परिणति में ही महारास या महोत्सव संभव है!

वेदों में नारी को तमोगुण प्रधान अर्थात् अविद्या (अज्ञान) माना गया है तथा पुरूष (भोक्ता) को रज़ोगुण प्रधान विषयवासना प्रधान। रज़ोगुण के संपर्क से काम (इच्छा) उत्पन्न होता है। **गीता** में कहा है स्त्री दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः । अधर्म के प्रमुख होने पर स्त्रियां दूषित हो जाती है और स्त्रीत्व के पतन से अवांछित संतान उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि कुल में अच्छी संतान स्त्रियों के सतीत्व और उनकी निष्ठा पर ही निर्भर करती है। जैसे बालक सरलता से कुमार्गी बन जाते हैं, कि स्त्रियां भी पतनोंमुखी होते हैं। अतः बालक एवं स्त्री दोनों को पारिवारिक बुज़ुर्गों का संरक्षण आवश्यक हो जाता है। गृहस्थ जीवन अर्थात् विवाहित जीवन में ही स्त्री सर्वाधिक सुरक्षित होती है, ऐसा **भाास्त्रों** का वचन है। **चाणक्य** ने कहा है–सामान्यतया स्त्रियां अधिक बुद्धिमान नहीं होतीं, अतः वे विश्वसनीय नहीं हैं। इसलिए उन्हें विविध कुल–परपराओं तथा कुल–धर्मो के पालन में व्यस्त रखना चाहिए। धर्म–कर्म एवं संस्कारों में अधिक रहना चाहिए। स्त्री की स्वतंत्रता से व्यभिचार को प्रश्रय मिलेगा। पुरूष का अर्थ भोक्ता माना गया है और स्त्री को भोग्य–सामग्री। विशेष कर आज के कलियुग में जहां कलह तथा दिखावे का बोलबाला है, अधर्म अमर्यादा, अनैतिकता, स्वार्थ और घोर भौतिकता का अडंबर है। ऐसे में जारकर्म (परगमन) की वृद्धि अधिक होने से वंश की शुद्धता पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता है। उपनिषद् का मानना है कि स्त्रियां तन–मन और भावना से कमजोर होती हैं, पर–आश्रित होती हैं, फलतः कमज़ोर क्षणों में उनके भटक जाने, कुमार्गी हो जाने और पतनोन्मुखी हो जाने की प्रबल संभावनाएं बनी रहती है। कहा गया है– 'वीर भोग्याः वसुंधराः'– वीर्यवान ही वसुंधरा का भोग कर सकता है अर्थात् सामर्थ्यवान, शक्तिसम्पन्न और पौरूषवान के लिए ही भोग्य–सामग्री होती है। जिस पुरूष ने मन पर शासन करना जान लिया, वही समर्थ होता है।

स्त्री और पुरूष के बीच यौन–संबंधों में भी एकमात्र प्रेम की ही सबसे अहम् भूमिका होती है! प्रेम के अभाव में यौन–संबंधों में परिपूर्णता, माधुर्य–मिठास, परितृप्ति, सम्पूर्ण संतुष्टि असंभव घटना है! प्रेम के प्रबल और चरम उफ़ान पर ही यौन–संबंध सफल होते हैं। यही वज़ह है कि दो विपरीतलिंगी के मध्य यौन–संबंध प्रेम की कमी के कारण अधिकांश मामलों में संतुष्टिदायक साबित, नहीं होते! अक्सर अतृप्ति, बेचैनी, असंतुष्टि, अप्रसन्नता, खिन्नता, मायूसी, अपूर्णता, अधूरापन, खालीपन, लिज़लिजापन, रिक्तता, अस्थिरता, असहज़ता, धोख़ा खाने का बोध, ठगे जाने की अनुभूति, बीच रास्ते में ही पुरूष द्वारा छोड़ दिये जाने का कटु अनुभव ही यौन–संबंधों में अधिकांशतः हर स्त्री के हिस्से में आता है। यथेष्ठता की कमी और सम्पूर्णता के अभाव के संग–संग प्रेम की अंतरंगता व समर्पणशीलता का स्पष्ट अभाव इसके मूल में होता है। भावनात्मक ऊष्मा के साथ आत्मीय लगाव के बिना कोई भी यौन–संबंध चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुंच पाता! पुरूष यहां कमियों का प्रतीक होता है और स्त्री ख़ूबियों का खज़ाना होती है!

स्त्री हो या पुरूष हर किसी का सत्य और असलियत तो अंत में प्रकट हो ही जाता है...! जब ज़ोर का तूफ़ान स्वतः आता है! सबके अपने–अपने तूफ़ान होते हैं, अपनी–अपनी प्रचंड आंधी होती है, स्वाभाविक भूकंप होता है जो अपने समय पर स्वतः प्रकट हो

जाता है। चाहे लाख़ कोई क़ाबू में रखने का प्रयास करें।

सच तो सच है कि यौन–संबंधों में दैहिक सुख, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक तृप्ति का विषय स्त्री के लिए पुरूष की तुलना में अधिक आवश्यक है, क्योंकि स्त्री बराबर की साझीदार और सहयात्री होती है– शह–मात के इस शतरंज़ी खेल में। यहां रतिक्रिया में स्त्री पुरूष–वर्चस्व के अधीन नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व का समान घटक होती है। इस कार्य में स्त्री अपनी भावनाओं, मर्यादाओं, अपनी शोभा और सौन्दर्य के साथ सदैव सहयोगी रूप में उपस्थित होती है और ऐसा सिर्फ़ ज़ायज, नैतिक और धर्मसंगत संबंध से ही संभव है। एक स्त्री के लिए यौन–शुचिता की अनिवार्यता कहां तक नैतिक है! ज़िन्दगी यौनिक पवित्रता और अपवित्रता से बड़ी होती है! परस्पर सहमति या बलात् के यौन–संबंधों के बाद भी वह समाप्त नहीं होती, चलती ही रहती है। यह सही है कि स्त्री–पुरूष संबंध शुचिता और शुद्धता में उन्हें बांधने अनादिकाल से चले आ रहे हैं। लेकिन इस संबंध में स्त्रियों की इच्छाओं की सीमा– रेखा खींचने के प्रयास भी कम नहीं हुए हैं। परकीया प्रवेश एक दुर्गम, किन्तु साध्य सच है। सत्य के कई आयाम हैं। उसके और अंधेरे–उज़ाले के बीच का । आज बाज़ार में...शहरे–ज़ाना में बा–सफ़ा कौन है...?बा–वफ़ा कौन है...?लम्बी पारी खेलकर भी इसे समझा नहीं जा सकता!

भारतीय समाज में नारी की सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थिति को उसके शरीर से जोड़ कर देखे जाने की मानसिकता अनादि काल से चली आ रही है। वैदिक युग से आधुनिक युग तक स्त्री को उसकी ज़ैविक बनावट के दायरे तक ही सीमित करके देखा गया। नैतिकता, शुद्धता और शुचिता की अपेक्षा सदैव उनसे रखी जाती रही है। उसे सिर्फ़ एक शरीर समझे जाने का आग्रह वर्तमान युग में भी समाप्त नहीं हुआ है। स्त्री के शरीर की सुरक्षा एवं पवित्रता का भय संपूर्ण समाज को आक्रांत किये रहता है। पुरूष की अपेक्षा स्त्री अपनी देह में ज़्यादा क़ैद है। वह अपने शरीर से ऊपर उठना या उसे भूलना भी चाहे, तो न प्रकृति उसे ऐसा करने देगी, न समाज। उसका सारा सामाजिक मूल्यांकन सबसे पहले उसके शरीर का मूल्यांकन है। गुण तो बाद में आते हैं। वह एक ऐसी 'दृश्य वस्तु' है, जिसे अपनी सार्थकता पुरूष की निग़ाह से सुन्दर और उपयोगी लगने में ही पानी है।

नारी की परतंत्रता के प्रमुख कारणों में से एक है यौन–शुचिता का सामाजिक दबाव। सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी के अवसर, शारीरिक पवित्रता के नष्ट हो जाने के भय से कई बार उससे छीन लिये जाते हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में यौन–शुचिता को नारी –अस्मिता का समानार्थी शब्द बना दिया गया है। नारी को पवित्र होना ही चाहिए, यदि किसी कारण वह शुचिता के इस आग्रह को पूरा नहीं कर पाई, तो घोषित रूप से चरित्रहीन कही जायेगी। नारी के लिए अपनी शारीरिक इच्छाओं को व्यक्त करना भी सर्वथा वर्ज़ित माना गया और शारीरिक संबंधों में भी स्त्री की इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न कभी महत्वपूर्ण नहीं रहा, क्योंकि वह हमेशा एक 'पैसिव पार्टनर' मानी जाती रही है। यौन–संबंधों में भी नारी के प्राकृतिक सहयोग को उसका उत्तदायित्व नहीं माना जाता है, इसलिए समागम की सफलता या विफलता के लिए पुरूष मात्र को ही ज़िम्मेदार ठहराया जाता है ।

परंपरागत नैतिक मूल्य स्थापित मापदण्डों के इतर यौन–संबंधों को वर्ज़ित मानते हैं। आज की उन्मुक्त जागृत नारी न केवल शारीरिक आवश्यकताओं का खुलासा करती है बल्कि शारीरिक संबंधों में समानता की भी मांग करती है। वह चाहती है कि पुरूष उसकी संतुष्टि–असंतुष्टि को भी उतना ही महत्व दे, जितना स्वयं की संतुष्टि को। ...सिर्फ़ अपने चाहने से दूसरे को पा नहीं लिया जाता!...पाने के लिए दोनों को एक–दूसरे को चाहना होता है। अपनी ज़रूरतों का खुलासा करने में अब स्वतंत्र स्त्री को कोई झिझक, हिचक, संकोच, शर्म, भय, टैबू नहीं! प्रेम में शरीर की अनिवार्यता और सहज स्वाभाविक आवश्यकताओं का इज़हार तथा देहधर्म को पूरा करने के लिए सभी नैतिक वर्ज़नाओं को लांघ जाना आज के बदलते दौर में आधुनिक स्त्रियों के लिए कोई मुश्किल काम नहीं रहा। आवश्यकता है पवित्र नहीं, चरित्र बनाने की! वह अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहती है, खुलकर जीना चाहती है। फ़िर भी क्षणिक आवेश में आकर ऐसा कोई निर्णय नहीं लेती जो कि उसका भविष्य ख़राब कर दे!

आधुनिक युग की नारी अपने नारीत्व को तलाश रही है, समाज द्वारा प्रदत्त परंपरागत भूमिकाओं से परे एक पहचान खोज़ रही है, जो है उसके नारीत्व की पहचान। जो घर–परिवार में अपने लिए भी एक अलग कोना तलाशती है। अपना हक़ मांग रही है। इसमें अनर्गल कुछ नहीं है! जो कुछ है बहुत सधा हुआ है, अनूभूत है, बहुत ग़ौरतलब है। बंधन और उन्मुक्तता दोनों के साथ आज आधुनिक स्त्री खड़ी हुई है।

स्त्री–पुरूष के संबंधों के सवाल तो अनादिकाल से चले आ रहे हैं और अधिकांश साहित्य उसी पर केन्द्रित हैं सारी दुनिया का। घर का अर्थ तंत्र भी स्त्री चलाती ही रही है अनादिकाल से लेकिन अब बाहर का भी। आवेग और हुलास से छलकते हुए इस जीवन का मूलभाव है निडरता और निश्चिंतता। आवेग भावनाओं को हमेशा जीवन की सतह पर झलकाता हुआ और हलचल मचाता हुआ दिखाई देता है। जीवन की सीधी सरल सपाट गति भी लगातार एक घटनापूर्ण हलचल से भरी हुई दिखती है। मिट्टी और पानी आप उठ बोलते हैं! इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच कोई दरार या फ़ांक नहीं। केन्द्र और परिधि के बीच अंतर तो होता ही है। सत्य किसी की ज़ेब में पड़ा पैसा नहीं है। कई आयाम है उसके और अंधेरे और उज़ाले के बीच का। जो विपुलता–बोझ और भार–मुक्ति के आनंद से भी पैदा होता है। हमाम में सभी नंगे हैं या एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं। किसी भी संक्रमणशील समाज में नैतिक सिसमोग्राफ़ी का प्रबल सूचकांक माने जा सकते हैं स्त्री–पुरूष के आपसी संबंध। आज पुरूष ही अधिक असंयत और पारदर्शी हो चले हैं और उन्हें संभालने के लिए स्त्रियां अधिक प्रौढ़ हुई हैं–उद्याम नदी–सी खुली–ढ़ली! प्रवेश के लिए अलग–अलग दरवाज़े और अलग– अलग गुप्त सुरंगें हैं। भोगने की प्रक्रिया जितनी जटिल है, भोग आत्मसात् करके एक दृष्टि के रूप में विकसित कर पाना उससे भी दुरूह! कुछ यौन–तंत्रियों के पूरे शरीर में प्रायः समरूप फ़ैलाव के कारण भी स्त्रियों की दैहिक भाषा बहुकेन्द्रीय हो जाती है। इस लिहाज़ से स्थिर, जड़ या गतिहीन यौनिकता का प्रतीक उसे कहा जाता रहा है। वह कभी अधीर नहीं होती। आत्मगर्व से भरी होती है। अभिमान से परिपूर्ण। गुमान से भरीपूरी। जिसकी अपनी इच्छाएं होती हैं। देह की आकांक्षाएं और स्व की अत्यावश्यकता एक साथ जुड़ जाती है। शारीरिकता अगर ठिकाने लग जाये, तो सार्थक हो जाये। स्त्री के लिए इस बात का

अहम् महत्व है एक ऐसी सच्चाई जो नैतिक रूप से पूर्णतः दोषरहित होती है। आनंद को चरम–सीमा तक ले जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति, परिस्थिति या स्थान कौन–सा है, स्त्री के लिए यही मायने रखता है। ...जहां दोनों ही एक दूसरे की अन्यता को, 'अदरनेस' को न सिर्फ़ समझते हैं बल्कि आदर भी करते हैं। बहुत गहरे उतर कर उस अवस्था की खोज़ में तल्लीन होते हैं जहां स्त्री–पुरूष एक दूसरे से सचमुच बराबरी के स्तर पर मिलजुल सकते हैं। अगर उनमें कोई भिन्नता है भी, तो वह जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही है। स्त्री और पुरूष में कोई फ़र्क नहीं होता और दोनों अपनी व्यक्तिकता के साथ पहचाने जाने का समान व्यवहार और इच्छाएं रखते हैं। सच तो यह है कि स्त्री सशक्तिकरण देह की राह होकर आता है। देह है तो वह है। बांकी सब तो हवाहवाई बातें हैं। जिनके भरोसे जीवन की गति है वह है देह!

सच यही है कि स्त्री कमज़ोर है, उसे प्रेम चाहिए, ऐसा प्रेम जो उसे पूर्ण कर दे, उसमें पूर्णत्व का अहसास करा दे। जो उसे उसकी देह से अलग और फ़िर देह में शामिल होने का एहसास करवा सके। उसे उसके पूर्णत्व में चाहने और उसके डूबते एहसासों को फ़िर से जगाने के लिए उसके मन को सहलाते हुए त्वचा से नीचे हृदय को चूमकर ऊन के गोले की तरह खुलती चली जाने के लिए विवश करा सके। ऐसा जैसे पहले कभी नहीं। उसके पास एक भरी पूरी देह है, जिसका सही मेल एक पूर्ण पुरूष के साथ ही संभव है। परवाह होनी आवश्यक है कि स्त्री–देह अपने भोग के लिए भी तैयार है कि नहीं। हर बार पुरूष जैसे उसके अधूरेपन के अहसास को और गाढ़ा करता और इस अंतहीन सुरंग को और लंबा करता हुआ। स्त्री–पुरूष में स्थापित होने वाले शारीरिक संबंध के बारे में कहा जाता है कि स्त्री की भूमिका वहां निष्क्रिय है। यानी स्त्री उस पूरी प्रक्रिया में ऑबज़ेक्ट है। यानी वस्तु। और सुख का भोग करने वाला पुरूष सब्ज़ेक्ट यानी कर्ता। आदि से अन्त तक अधूरेपन को महसूस करती और हर प्रेम में पूर्णत्व की तलाश करती हुई स्त्री निःस्वार्थ और ख़ालिस प्रेम की गंध महसूस कर लेना चाहती है। प्रेम की उफ़नती नदी में कूद जाने से पहले उसकी गहराई नापने की क्षमता भी रखती है। दरसल पुरूष जानता ही नहीं कि स्त्री को प्रेम की दरकार होती है, उसपर या उसकी देह पर अधिकार की नहीं। और पुरूष प्रेम की खोल में स्त्री और उसके पूरे अहसास पर अधिकार चाहता है। प्रेम की चाह में स्त्री पुरूष को अपनी देह सौंपती चलती है और जबतक इस बात का अहसास होता है, बहुत देर हो चुकी होती है।

देह–संबंधों की आत्यंतिक पराकाष्ठा अद्वैत की स्थिति होती है जिसका सहज ही अनुमान आंखों की बदलती रंगत, मुख–मुद्रा और हावभाव, व्यवहार से लगाया जा सकता है। प्रेम–संबंधों में नारी का सच है असीम होना। जो असीम है, विराट है प्रकृति की तरह, उसका न प्रारंभ है न अंत है– पुरूष उसको पूरा–पूरा कैसे जान सकता है! उसका रहस्य तो रहस्य ही रहेगा, अज्ञेय। कोई पूर्णविराम नहीं, समाप्ति नहीं, सब कुछ होकर भी अभी होने को शेष रहेगा। अंतहीन है उसकी संभावना, वहीं–की–वहीं, आत्यंतिक गहराई में यथावत् बनी। चाक घूमता है, कील नहीं घूमती। कील अपनी जगह पर वैसी–की–वैसी। जिस पर घूमता है, वह नहीं घुमती। अगर कील घूम जाए, तो फ़िर चाक गिर जाए! प्रकृति का यही स्वभाव है, जड़वत, अक्रियाशील, निष्कर्म स्थिति! जो होता है, प्रकृति में होता है। सबसे बड़ा कृत्य करने से नहीं होता, अपने–आप होने से होता है। पुरूष के लिए यहां कर्ताभाव और उसके मन की मौजूदगी ही छेद है, जिससे सब बह जाता है, बिख़र जाता है, चूक जाता है। मन का यहां विश्राम में होना ही सुख की झलक का कारण है। प्रकृति वही देखना चाहती है जो वह है, अपनी ही प्रतिछवि! पुरूष ऊपर–ऊपर है और स्त्री बहुत गहराई में। नौका को सागर में छोड़ना होता है, सागर की पुकार अज्ञात की पुकार है। जीने का रास्ता है उसे, समझने का नहीं। जितना समझेंगे, उतना ही ज़्यादा शेष है समझने को।

और प्रेम का जानने से क्या संबंध?प्रेम कुछ जानता ही नहीं, प्रेम निर्दोष है, ज्ञान से मुक्त है। जो ज्ञान को ढोता है, वह प्रेम नहीं कर सकता। इसलिए प्रेम पुरूष के वश की बात ही नहीं। प्रकृति कभी हायतौबा नहीं मचाती, हाहाकार नहीं करती, आपाधापी में नहीं होती–उसमें परिपूर्ण ठहराव होता है, सहजता–स्थिरता होती है, सम्पूर्णता होती है। क़शमकश में होना प्रकषति का स्वभाव नहीं। प्रकृति संग तालमेल तो ठहर जाने से ही संभव है, भागदौड़ से नहीं। ठहरे पांव तो मिले गांव। ऐसे चलना होता है जैसे अनंतकाल मिला हुआ हो, कोई ज़ल्दी नहीं, कहीं से उतावलापन–अधीरता नहीं। प्रकृति के लिए आनन्द तो लयतालबद्ध संगीत की तरह कतारबद्ध– श्रृंखलाबद्ध खड़े होते हैं। वहां सिर्फ़ एक आनन्द नहीं है, एक आनंद के बाद दूसरा, तीसरा ... शिख़र–पर–शिख़र, शिखरों–से–शिखर, शिखर के बाद शिखर और एक–से–एक बड़ा शिखर, वहां तो बस आनंद–ही–आनंद है, अंतहीन आनंद है समय के विस्तृत फ़ैलाव में! इसे पाना कम, आविष्कृत ज़्यादा करना होता है। प्रकृति के लिए धीमी रफ़्तार की भी कोई सीमा नहीं होती और प्रचण्ड रफ़्तार की भी कोई सीमा नहीं होती। पर्याप्तता और पूर्णता प्रकृति की मांग है।

यौनतंत्रियों के पूरे शरीर में ही समरूप फ़ैलाव के कारण स्त्री की देहभाषा बहुकेन्द्रीय होती है। सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति, परिस्थिति, स्थान विशेष अर्थ रखते हैं। पुरूष वही, जो उसे पूर्ण कर दे, पूर्णत्व का अहसास करा दे। स्त्री का सही मेल एक पूर्ण पुरूष के साथ ही संभव है। पूर्णता पाकर ही स्त्री में सौन्दर्य का संचार होता है। यही कारण है कि वीमन लिव एवं स्त्री–सशक्तिकरण यौनउन्मुक्त दौर में पश्चिम में स्त्रियां आज ऑगैज़्म प्राप्ति को अपना मौलिक अधिकार समझ रही हैं। इतना ही नहीं इसके लिए पर पुरूष गमन से भी उन्हें गुरेज़ नहीं है! उनकी सोच है कि अगर पुरूष बेवफ़ा हो सकते हैं, तो वो ही बा–वफ़ा क्यों रहें?यौन में चरमसुख पर बराबर का अधिकार मांग रही हैं। विलम्ब करना नारी का स्वभाव होता है। सब्र, धैर्य, इत्मीनान से भरीपूरी होती है। यौन–संबंधों में अत्यधिक विलंब से ही उत्तेजना की पराकाष्ठा पर पहुंच पाती है और पर्याप्त समय तक चरमानंद की अवस्था में कई बार आगे–पीछे होती रहती है और बार–बार अनगिन चरमानंद प्राप्त करती रहती है। ऑर्गेज़्म प्राप्त करने के बाद भी पूर्णतः श्रान्त–क्लान्त और शिथिल नहीं पड़ती और कई बार चरमसुख प्राप्त करती है। पुरूष समान उसे तुरंत ही स्खलन और शिथिलता का सामना नहीं करना पड़ता है। उत्तेजना और सुख को हज़म करते रहने के लिए उसका तंत्रिका तंत्र पूर्णतः सबल होता है। पुरूष इसमें सब्जेक्ट होता है और स्त्री ऑब्ज़ेक्ट, पुरूष कर्ता और स्त्री कर्म की भूमिका में। पुरूष एक्टिव और स्त्री पैसिव रोल में। पुरूष डोनर और स्त्री रिसीवर के रोल में। स्त्री मार्ग जैसी और पुरूष बटोही जैसा। मार्ग कहीं आता–जाता नहीं।स्वयं से गति नहीं

करता, मुसाफिर ही मार्ग से यात्रा करते हैं, रास्ते से आते–जाते रहते हैं। राह का कभी कुछ नहीं बिगड़ता। राह से सफ़र करने वाले राही ही थकते है, उन्हें ही विश्राम की ज़रूरत पड़ती है। बटोही को ज़ल्दी होती है पंहुचने की। रास्ते को पहुंचाने की कोई शीघ्रता नहीं होती। स्त्री में प्रेम, स्वर, संगीत, सुगंध है, मिठास और स्वाद की बड़ी ग़हरी प्रतीति है, एक प्रकार की उसमें समतुल्यता है, गोलाई है। स्त्री अपने होने से ही परम तृप्त है। कुछ डेग–मात्र चलकर ही पूरी पृथ्वी को नापा नहीं जा सकता। स्त्री पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, फ़िर भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। पूर्ण को पूर्ण में डाल दें, फिर भी पूर्ण उतना का ही उतना है।

पुरूष के साथ समस्या यह है कि बिना दौड़े प्रतियोगिता में प्रथम् आना चाहता है। मुकदमा दायर करने के पूर्व ही उसे डिग्री पा लेने की बेताबी होती है और जहां होना चाहिए सम्पूर्ण ठहराव के साथ, वहां पूरी तरह उपस्थित नहीं होता, कहीं और होता है, अभी में मौजूद नहीं होता। जबकि नारी जहां होती है, सिर्फ़ वहीं होती है, अभी में सम्पूर्ण उपस्थित। पुरूष की तरह कहीं और नहीं होती। यही वज़ह है कि पुरूष तो तुरंत ही वापस लौट जाता है, मगर स्त्री शीघ्रता में लौट नहीं पाती, वहीं–की–वहीं ठिठकी रह जाती है। स्त्री के लिए सम्पूर्ण नारीत्व का अहसास पुरूष या प्यार की ज़रूरत के अहसास से कहीं ग़हरी और जटिल चीज़ है। लंबी छलांग और चारे को प्राप्त करने के तौर–तरीक़े के संग ताक़त को महसूस कराया जाना अति आवश्यक होता है। मगर पुरूष पास नहीं देखता, दूर ही देखता रहता है। आशंकित तथा भयभीत, चिंतित ही अधिक होता है, मानसिक उधेड़बुन में ही उलझा रह जाता है, स्वयं को कर्ता और भोक्ता समझने के कारण असफल हो जाता है। उसमें साहस, आत्मविश्वास एवं धैर्य की ऐसे समय में प्रायः कमी पायी जाती है। इसलिए चूक जाता है।

सच तो यही है कि पुरूष जबतक स्त्री की संपूर्ण देह–वीणा के तारों को धीरे–धीरे पूरी तरह छोड़कर झंकृत करते हुए उसमें काम की राग–रागिनियां उत्पन्न नहीं भरता, सुर लय ताल छंद में पिरोकर संगीत–सरग़म उत्पन्न नहीं कर देता, तब तक स्त्री की देह सोयी हुई निष्क्रिय ही रह जाती है, बिना पुरूष के जगाये अपने–आप नहीं जागती। पुरूष की सक्रियता, क्रियाशीलता और शक्ति के बदले ही स्त्री को विभिन्न प्रकार के आनंद और सुख की प्राप्ति हो पाती है। इस मामले में वह पूरी तरह पुरूष पर ही निर्भर करती है, उसी के अधीन होती है। पुरूष के पहल की बाट ज़ोहती रहती है। अपने से न तो आरंभ कर सकती है और न ही समापन। स्त्री के लिए इसमें कभी पूर्णविराम नहीं आता, सदा होने को शेष रहता है, अंतहीन होती है उसकी संभावना, पुरूष समान वह चूक नहीं जाती! स्त्री सागर है और पुरूष चम्मच। छोटे–से चम्मच से सुविस्तृत सागर को नहीं नापा जा सकता। इस दिशा में पुरूष का सारा प्रयास नन्हीं–सी चोंच में चुटकी–भर मिट्टी लिए विशाल समन्दर के अंतहीन विस्तार को पाटने के क्षुद्र प्रयास जैसा ही साबित होता है। सम्मोहित कर देनेवाली समाप्ति के बाद भी स्त्री की झंकृत देहवीणा का गहन अनुनाद देर तक बना ही रह जाता है। प्यास बची ही रह जाती है। इस मामले में पुरूष की सारी कोशिशें अपर्याप्त, अधूरी, बनावटी तथा हास्यास्पद–मात्र ही होकर रह जाती हैं और स्त्री का भिक्षा–पात्र कभी भर नहीं पाता, इसमें कोई तलहटी नहीं होती। ज़रूरी होता है शरीर–शरीर के बीच संवाद, मन–मन के बीच वार्त्तालाप, धीमी प्रक्रिया और ज़ल्दी भी देर से करना! इसके बग़ैर सम्पूर्णता का अहसास नहीं कराया जा सकता। पूर्णता का अनुभव होना स्त्री के लिए अनिवार्य होता है क्योंकि उसमें 'काम' की मात्रा पुरूष की तुलना में कई गुना अधिक पायी जाती है तथा कामावेग पुरूष की तुलना में काफ़ी कम होता है। चरमावेग प्राप्त करने में भी पर्याप्त समय लग जाता है। चरमावेग की स्थिति में दीर्घ कालावधि तक यथावत् ही बनी रह जाती है। चरमोत्तर स्थिति के बाद भी उसे सहज सामान्य पूर्ववत् स्थिति प्राप्त करने में अत्यधिक समय लग जाता है। कारण स्पष्ट है कि विलंब करना नारी का यौन–स्वभाव है, क्योंकि समागम में वह अंग–विशेष द्वारा नहीं, बल्कि समूचे शरीर से ही सक्रिय रूप से संलग्न होती है। अतः पुरूष यही सोचकर सारे उपाय, प्रयास, उपचार, प्रयोग, वैज्ञानिक अनुसंधान करे कि स्त्री को पूर्णता प्राप्त करने में काफ़ी समय लग जाता है, तभी वह स्त्री को चरम नारीत्व का अहसास करा सकता है। इसके लिए पुरूष के मन में भय का न होना, मन का प्रसन्न निश्चिंत रहना और प्रेमपूर्ण होना आवश्यक है । जब पुरूष–गंभीर नहीं हो, मन से भारी–बोझिल न हो ओर ज़ल्दी में तो हो ही नहीं। जो पुरूष अतीत और भविष्य में नहीं होता, वही वर्तमान का आनंद ले–दे सकता है। तभी सामर्थ्य, क्षमता और दक्षता से पूर्ण होता है। काम भले ही पुराना हो, मगर हरबार नये एप्रोच के साथ, पहले का सब भूलकर। सिर्फ़ उपभोग की कला में निपुण होकर। एक लंबी यात्रा का मुसाफ़िर होकर और ऐसा कभी होता ही नहीं। चूंकि बहुत लंबे समय तक कोई भी नारी लैंगिक–संसर्ग का आनन्द प्राप्त करते रहने में पूरी तरह सक्षम ओर सहशील होती है और समय के विस्तृत फ़ैलाव में ही उसमें मनोदैहिक प्रतिक्रियाएं अनुकूलता प्राप्त कर पाती हैं, अतः नारी के लिए यह मायने रखता है कि पुरूष कौन–सा है (पात्र) परिस्थिति कैसी हैं?पूर्ण पुरूष से ही सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश पूरी हो सकती है।

टॉल्सटाय ने कहा है– "और अंत–अंत तक भी मैं यह जानकर नहीं जान सका कि अंततः एक औरत चाहती क्या है?" अगर औरत अपनी मादा–औक़ात पे उतर आये, तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं होता। अगर ठान ले, तो उसकी मरज़ी को पूरा होने से कोई नहीं रोक सकता। यह स्त्री का सहज प्राकृतिक शांत स्त्रैण–स्वभाव होता है कि वह प्रेम में अपना क़दम पहले आगे नहीं बढ़ाती और मज़बूर अगर दिल से न हो, तो पास कभी नहीं आती। जिस तरह पुरूष स्त्री का प्रेम पाने के लिए उसका पीछा करता है, अगर कोई स्त्री भी उसी प्रकार प्रेम के लिए पुरूष का पीछा करना शुरू कर दे, तो फ़िर पुरूष खुद ही भाग खड़ा होगा। कोई पुरूष बच भी सकेगा, अगर स्त्री उसके पीछे लग जाये तो?स्त्री स्वयं अपने लिए प्रगाढ़ आनंद में होती है, पुरूष समान बेचैन और अस्थिर नहीं होती। यही कारण है कि स्त्री में असीम संभावनाएं सदा मौजूद होती हैं। पुरूष स्त्री के अनंत ग़हरे सागर में कुछ दूरी–मात्र तक ही तैर सकता है, पूरे सागर को तैर पाना उसकी सीमा से बाहर की बात होती है। शीघ्र ही पुरूष समान पराकाष्ठा का स्पर्श का लेना स्त्री का स्वभाव हीं। इसलिए पूर्ण तैयारी के बिना प्रकृति के नियमों से खेलना पुरूष के लिए मंहगा सबित होता है। प्रकृति पूर्ण से कम कुछ भी नहीं लेती है! इसलिए यहां संघर्ष नहीं, समर्पण, आभार, अहोभाव चाहिए। धारा के विरूद्ध नहीं, धारा के संग–संग, धारा की मरज़ी पर ही स्वयं को छोड़ना होता है, जिधर ले जाए धारा उधर ही।

कृतकृत्य होकर धन्यता, कृतज्ञता, आभार–बोध से भरकर ही सान्निध्य की संपूर्णता का अनुभव किया जा सकता है, मन और अहंकार को त्याग कर, स्वयं को छोड़कर, अन्यथा कुछ होने को विस्मृत कर। प्रकृति जब पूर्ण जाग्रत अवस्था में होती है, तो उसकी शक्ति का अंदाज़ा ही नहीं लगाया जा सकता। कठोर–से–कठोर पर्वत और मज़बूत–से मज़बूत सम्पूर्ण दृढ़ता और पूरी ऊँचाई में खड़े पेड़ उसके सामने पल–भर नहीं टिक पाते, समूल उखड़ कर धराशायी होकर रह जाते हैं।

'भोगा नः भुक्ताः वयमेव भुक्ताः'– हम भोग को नहीं भोगते, भोग द्वारा स्वयं ही भोग लिये जाते हैं। उपनिषद् के अनुसार– 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' – जिसने त्यागा, उसी ने भोगा।

हर स्त्री प्रेम चाहती है। सिर्फ़ प्रेम, जिसमें स्वयं को भूला सकें और प्रेम के रास्ते ही देह के सुख को भोगना चाहती है। आहत मन पर एक प्रेम–भरा चुम्बन चाहती है। स्त्री को पाने की अपनी बेसब्री के चलते पुरूष स्त्री के बारे में ज़ल्दबाजी करते चलते हैं। पुरूष के संसर्ग से प्रायः हर बार निराश ही लौट जाना स्त्री की जैसे नियति होती है। समाज में प्रेम के अनाम संबंध की अपेक्षा वैवाहिक जीवन का प्रेम ही अन्ततः सत्य पाया जाता है। तन का धर्म मन के धर्म से अलग नहीं होता! हर बंदिश में भी अपनी एक स्वर लहरी होती है देह को झंकृत करती हुई। अब असली सवाल यह होता है कि हम आख़िर देखना क्या चाहते हैं?अपने सम्पूर्ण चरम् नारीत्व की तलाश करती आज की नारी किसी असमंज़स में नहीं दिखती, चाहे प्रेम के मामले हों या यौन के प्रसंग! आधुनिक नारी समझने लगी है कि संवेदनशील होना उपद्रव में पड़ना है। इसलिए क़शमकश, हायतौबा, हाहाकार, अनिश्चय की स्थिति से अब तेज़ी से बाहर निकलने लगी है । समसामयिक परिवेश में तेज़ी से बदलते सम्बन्धों के समीकरण में तथा निरंतर भावशून्य एवं संवेदनहीन होते समाज में सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश आज भी नारी के लिए मृगतृष्णा ही प्रमाणित हो रही है।

लघुकथा

सच्चा रिश्ता

संजय वर्मा 'दृष्टि',
शहीद भगत सिंह मार्ग
मनावर, धार म.प्र.

रंग–बिरंगी चिड़ियों को दुकान में बिकते देख पत्नी ने दो चिड़ियाँ खरीद लीं। घर लेकर उनके लिए दाना पानी नियमित रूप से देना दिनचर्या में शामिल हो गया। उन चिड़ियों के नाम भी रख दिए गए। अब ऐसा लगने लगा, मानो वे घर के सदस्य हों। जब कभी बाहर जाना हो तो उनके देखभाल की चिंता सताती। समय बिता तो उनकी संख्या दस बारह हो गई। उन्हें सँभालना मुश्किल सा लगने लगा। एक दिन विचार किया कि क्यों न हम इन्हें चिड़ियाघर रख आएँ। चिड़ियों को चिड़ियाघर दे आए। जब उन्हें देकर वापस जाने लगे तो पत्नी ने उन्हें उनके दिए नाम से पुकारा तो वे अपने पंख फड़फड़ाने लगे। ऐसा लग रहा था मानो बच्चे अपनी माँ को पुकार रहे हों। आँखों में आँसू की धारा बह निकली। मन कह रहा था कि वापस घर ले चलें। तब महसूस हुआ कि अपनों से दूर होने की टीस कैसी होती है। चिड़ियों को छोड़ते समय उठी टीस से आँखों से आँसू गिरने लगे। घर पर आए तो उन रंग–बिरंगी चिड़ियों की गौरैया दोस्त बन गयी थी, वो उन्हें न पाकर शोर करने लगी। गौरैया के लिए दाना–पानी और रहने के लिए खोके का घर बनाकर उसका भी नाम रखकर उसे पुकारने लगे, मानो वो भी हमारे घर का ही सदस्य हो। उनके और हमारे बीच मानो एक सच्चा रिश्ता बन गया हो।

कविता

शॉर्टकट

अंजनी श्रीवास्तव
मो. 9819343822

शॉर्टकट अपनाने वाले ओवर स्मार्ट होते हैं
ऐसा वो खुद सोचते हैं
शॉर्टकट से जो कुछ भी मिलता है
वो प्लास्टिक के सामान जैसा होता है
जो साबूत रहे या नष्ट हो जाये
नुकसान ही पहुँचाता है
शॉर्टकट का जम्प लगाकर आदमी
मुँह के बल गिरता है
शॉर्टकट और कुछ नहीं
आयात का कर्ण होता है
जो दो कोनों को छूने का अधूरा काम करता है
सुनार के हाथों चाँदी पर सोने का पानी चढ़ाने जैसा ही
शॉर्टकट भी एक खूबसूरत छलावा है
शॉर्टकट मारनेवाला सही रास्ते से ही नहीं
खुद से भी अपरिचित रह जाता है
कहने को मंजिल मिलती है
मगर उपलब्धि का मंजिल नहीं मिलता
तेजी से स्टेशन लाँघती हुई भी उसकी ट्रेन कहीं न कहीं
जाकर शंट हो जाती है
कामयाबी उसपर फिदा
जो शॉर्टकट को कहे अलविदा

समीक्षा

स्त्री शोषण की व्यथा-कथा

डॉ0 सीमा शर्मा
शास्त्रीनगर, मेरठ, (उ.प्र.)
मो0–9457034271

वर्तमान समय ऐसा है कि जहाँ स्त्रियाँ एक ओर तो नित नए प्रतिमान गढ़ रही है। शीर्ष पर पहुँचकर अपनी सशक्त पहचान बना रही है। हर एक दुर्गम कहने जानेवाले क्षेत्र में अपनी सामर्थ्य भी सिद्ध कर रही है और ऐसा वे किसी बैसाखी के सहारे नहीं बरन अपने दम पर कर रही है। इन सशक्त महिलाओं की उपलब्धियाँ सभी को आकर्षित भी करती हैं, किन्तु इन महिलाओं की संख्या मात्र इतनी हैं, जिन्हें उँगलियों पर गिना जा सकता है।, जबकि स्त्रियों का बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जो आज भी मूलभूत अधिकारों और सुविधओं से वंचित और शोषित है। एम. जोशी हिमानी का उपन्यास 'हंसा आएगी जरूर' इसी वंचित और शोषित वर्ग की कथा कहता है। उपन्यास की कहानी उत्तराखंड से सुदूर ग्रामीण अंचल से आरंभ होकर लखनऊ होते हुए पंजाब तक जाती है, किन्तु स्थान परिवर्तन के साथ 'हंसा' के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता। वह तो पितृसत्तात्मक समाज के शोषण और दमन के चक्रव्यूह में ऐसा फँसती है कि कभी बाहर नहीं निकल पाती।

उपन्यास की 'नैरेटर' हेमा में और एम.जोशी हिमानी में बहुत साम्य दिखाई देता है। वैसे भी किसी रचना में लेखक के निजी अनुभवों की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इस संबंध में सुप्रसिद्ध कथाकार ममता कालिया का कहना है कि लेखक अपने जीवन का तीन–चौथाई तो अपनी रचनाओं में उड़ेल देता है। इस प्रकार लेखिका के वास्तविक अनुभव, प्रस्तुत रचना को विश्वसनीय बनाने का कार्य करते हैं। लेखिका क्योंकि स्वयं उत्तराखंड के सुदूर पहाड़ी क्षेत्र से हैं तो वे वहाँ का परिवेश, रीति–रिवाज, परंपरा, जीवन–शैली और रुढ़ियों से भी भलीभाँति परिचित है, तभी तो वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ–साथ वहाँ की कठिनाइयों और स्त्रियों के दुर्गम जीवन का इतना सजीव चित्रण कर पाती है। वे लिखती हैं–''औरतों की जवानी में खेतों में हाड़तोड़ मेहनत कर थोड़ा–सा अनाज पैदा कर पाने, ऊँचे–ऊँचे पेड़ों पर चढ़कर जानवरों के लिए पत्तों का चारा इकट्ठा करने, जलावन की लकड़ियों की ढेरी लगाने में जाया हो जाती है।'' ये ऐसा वर्ग है, जो अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपना पूरा जीवन होम कर देता है, वहीं एक अभिजात्य वर्ग भी है, जिसे केवल घर के लिए भी गृह सहायक की आवश्यकता होती है। घरेलू कार्यों के लिए महिलाएँ और लड़कियाँ सबसे उपयुक्त होती हैं; क्योंकि साधारणतया उनसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। हेमा की माँ 'हंसा' को इसलिए लाई थी अपने मायके से। बारह–तेरह वर्ष की हंसा किसी युवा स्त्री की तरह घर के सारे काम निपटा लेती थी, जिसके कारण भी निश्चिन्त हो गई थी। उनकी इस निश्चिन्तता ने ऐसा संकट उनके सामने ला खड़ा किया, जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। बड़ी होती हंसा और हेमा जब मासिक धर्म के चक्र में फँसी तो माँ को अच्छा नहीं लगा। इसके पीछे दो कारण दिखाई देते हैं–एक लड़कियों के बड़े होने का संकेत, दूसरा हंसा की कुछ दिनों के लिए घर के कामों से छुट्टी। यह लेखिका ने उस मानसिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया है, जो स्त्री को मासिक धर्म के समय अछूत मानकर उसे हेय दृष्टि से देखते हैं और उन्हें किसी अँधेरे कोने में स्थान दे दिया जाता है। पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित स्त्रियाँ इस व्यवस्था को पूरे मनोयोग से बनाए रखने का प्रयत्न करती है। ऐसे में जब घर की स्त्रियाँ किसी अँधेरे कोने में रहने को विवश है तो गृह–सेविका की दशा को तो समझा ही जा सकता है। यही कारण है कि हंसा को उन पाँच दिनों के लिए जानवरों के साथ (गायों के रहने का स्थान) गोष्ठ में स्थान मिलता है।

हंसा के जीवन के ये कठोर पाँच दिन उसके संपूर्ण जीवन को अंधकारमय बना देते हैं, जब किशोरी हंसा गर्भवती हो जाती है। यहाँ एक तथ्य है, जो विश्वसनीय नहीं बन पाता। हंसा के पेट में हेमा के पिता का बच्चा है और यहाँ संकेत किया गया है मासिक धर्म के समय जब हंसा गोष्ठ में सोती थी तो पिता को रात के समय धीरे से गोष्ठ का दरवाजा खोलते बंद करते महसूस किया गया।' यदि ऐसा होता था तो सामान्यतया माना जाता है कि मासिक चक्र के समय गर्भाधान की संभावना नगण्य होती है। ऐसे में कहा जा सकता है कि उस किशोरी का शोषण अन्य दिनों में भी किया जाता रहा होगा। उस पुरुष में अपने कुकृत्य को लेकर तो कोई पछतावा नहीं है, किन्तु 'लोक' का भय अवश्य है। तभी तो वह अपनी पत्नी से कहता है–'देवी! मुझे माफ कर दो। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ में है। तुमने आग को ही घर में रख लिया था, मैं जलने से खुद को बचा न पाया।'' ये शब्द एक ऐसे के पात्र हैं, जो स्वयं पंडित है और पूरे समाज में आदर्श और पूजनीय माना जाता है। जब ऐसे लोग ही विवेकशून्य हो जाएँ तो किसी और को क्या सीख देंगे। अपनी ही पुत्री की आयु की एक किशोरी उसके लिए भोग्य बन जाए, कितनी भयावह स्थिति है। यह कहानी यहीं समाप्त नहीं होती, हंसा के लिए तो यह उसके शोषण का प्रस्थान बिन्दु मात्र है। पितृसत्तात्मक सोच केवल पुरुषों को ही नहीं महिलाओं की भी होती है; क्योंकि ये भी तो इसी व्यवस्था का अंग है और आश्रित है पुरुष पर। हेमा की भी माँ का क्रोध, पीताम्बरदत्त के मात्र एक वक्तव्य अपने प्राण त्यागने के अलावा कोई चारा नहीं...। शायद मेरे लिए विधि का यही विधान है, से जैसे गायब हो जाता है। पीताम्बर का यह वाक्य चेतावनी का कार्य करता है, यदि वह न रहा तो, वह दाने–दाने को मोहताज हो जाएगी। यहाँ नैतिक–अनैतिक से अधिक उपयोगिता का प्रश्न है। एक तो पुरुष, दूसरा पोषक भी, तो उसे पापी या अपराधी कैसे माना जा सकता है?इसलिए शीर्षक को अपराधी न मानकर शोषित को अपराधी मान लिया जाता है और शरण ली जाती है भूती आमा की–'हो न हो यह सब करा–धरा मेरे मायके की भूती आमा का है। ....आमा ने ही मेरा घर बर्बाद करने के लिए इस डाकिनी को मेरे साथ भेजा था शायद!' प्रस्तुत उपन्यास में भूती आमा की मार्मिक कथा, छोटी सी सहायता कथा के रूप में आती है। इस कथा में लेखिका ने भागीरथी के माध्यम से उन स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण किया है, जिनका संतान उत्पन्न करने के, एक यंत्र के रूप में उपयोग किया जाता है। उसकी मानसिक और शारीरिक दशा की परवाह किए बिना, उनके साथ यह सब किया जाता है यदि भागीरथी इतनी कम आयु की न होती, तो उसे इस भयानक अंत का सामना नहीं करना पड़ता। परंपरा के नाम पर सड़ी–गली रूढ़ियों स्त्री दुर्दशा की ग्राहक बनती है।

कथा के आगे बढ़ने पर हेमा की माँ का एक अलग ही रूप सामने आता है। वह 'हंसा' के साथ हुए शोषण को छुपाने के लिए और अपने पति पीताम्बर दत्त के बचाव के लिए एक कहानी गढ़ती है और उसमें निर्देशन से लेकर मुख्य पात्र की भूमिका निर्वहन स्वयं करती है। यहाँ एक सत्य को छुपाने के लिए भी नहीं, हजारों झूठ बोले जाते हैं। सब अपना–अपना अभिनय करते हैं, किन्तु 'हंसा' मूक ही बनी रहती है। वह तड़पती है, लेकिन प्रतिशोध नहीं करती। यही कारण है कि 'हेमा' के मन पर इस घटनाक्रम का ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिससे वह कभी बाहर नहीं निकल पाती। किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक के अनुभव उसे एक खंडित व्यक्तित्व में बदल देते हैं। वह 'हंसा' की दशा के कारण व्यथित हो जाती है और उसका बदला लेना चाहती है। अपने माँ व पिता के कृत्यों के कारण वह बहुत कठोर बन जाती है और विद्रोह की सीमा तक जाती है और वह विवाह न करने का भी निर्णय लेती है। माँ के द्वारा विवाह की बात कहे जाने पर यह अपना विरोध प्रकट करती है–'भी हंसा को वापस लाकर पहले उसका कन्यादान करो तो, मैं दूसरे दिन ही तुमलोगों से अपना कन्यादान करा लूँगी।'

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि 'हंसा' के साथ इतना कुछ घटित होता है, लेकिन उसका परिवार कहीं नहीं है। उसे एक बार घर से भेजकर, क्या उसका परिवार इतना निश्चिंत हो गया कि कभी उसकी सुध लेने की भी नहीं सोची। जबकि वह कहीं बहुत दूर से नहीं आई थी, तो क्या वह बोझ थी, जिसे उतारकर उसके परिजनों ने मुक्ति पा ली थी और उसके जीने मरने से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता था। बाल मजदूरों के साथ, चाहे लड़की हो या लड़का, कितनी ही अप्रिय, भयानक और वीभत्स घटनाएँ पढ़ने–सुनने को मिलती है और घरों में काम करनेवाली स्त्रियों में बहुत बड़ी संख्या में गंभीर समस्याएँ सामने आती हैं इस उपन्यास में हंसा मूक रहकर भी, अपनी जैसी स्थितियों में जीनेवाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। ये ऐसा वर्ग है, जहाँ भी रहे शोषण–अन्याय से बचने के लिए बहुत कम ही अवसर इनके पास होते हैं। अनामिका जी का कहना–'स्त्री की देह उसके शोषण प्राइम साइट है।' बहुत सही है। हंसा भी जैसे मात्र एक 'देह' बनकर रह जाती है, चाहे पीताम्बर दत्त हो, सरदार हो या वे बलात्कारी, हंसा तो सभी के लिए मात्र एक 'देह' है। पूरे कथानक में हंसा की परिणति एक वस्तु या भोग्या के रूप में दिखाई देती है।

हेमा ने क्योंकि हंसा के जीवन की कठिनाइयों को देखा– समझा और महसूस किया, इसलिए वह इस समस्त घटनाक्रम से स्वयं को अलग नहीं रख पाती और उसपर यह सब इस तरह से आच्छादित है, जिससे वह स्वयं का भला–बुरा भी नहीं सोच पाती। उसे असित के रूप में ऐसा जीवनसाथी मिला, जिसमें स्त्री जैसा समर्पण था। वह हर स्थिति में अपनी पत्नी के साथ था, किन्तु हेमा उसे भी अपनी कठिनाइयों में शामिल नहीं करती। यह उसकी बहुत बड़ी भूल थी, जबकि उसने यह सब जानकर नहीं किया, इसे परिस्थितिगत विवशता ही कहा जाएगा, किन्तु कारण कुछ भी हो, हेमा ने खोया बहुत कुछ। वह क्या वापस पा सकेगी?यह तो भविष्य ही बताएगा।

'हंसा कब आएगी' शीर्षक में एक प्रश्न है और उपन्यास कई प्रश्न पाठकों के समक्ष छोड़ता हुआ समाप्त हो जाता है। यहाँ लेखिका ने कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है, किन्तु कई संभावनाओं को अवश्य जन्म दिया है। लेखिका ने समस्याओं को यथारूप पाठकों के समक्ष रख उसी के विवेक पर छोड़ दिया है कि जैसे चाहे वैसे देखे और समाधान सोचे। क्योंकि उपन्यास के अंत में कोई समाधान नहीं है, तो उपन्यास समाप्त होकर भी समाप्त नहीं होता और पाठक के मस्तिष्क में आगे भी गढ़ा जाता है, यह उपन्यास की सफलता भी है। हम चाहे कहीं भी रहते हो किसी सुदूर गाँव में, किसी नगर या महानगर में पर हंसा हमें किसी–न–किसी रूप में मिल ही जाएगी। यथार्थ तो यही है, इसे नकारा नहीं जा सकता।

उपन्यास आकार में लघु, किन्तु कथ्य में बहुत बड़ा है। कथा कहने का सरल और सुरुचिपूर्ण ढंग, कथावस्तु को कहीं बोझिल नहीं होने देता और पाठक की रुचि को निरंतर बनाए रखने में सफल होता है। यही कारण है कि उपन्यास को एक बार पढ़ना शुरू किया तो बीच में छोड़ना लगभग संभव है। भाषा सरल और पात्रानुकूल है, क्योंकि कहानी उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्र में शुरू होती है, तो वहाँ की भाषा के कुछ शब्दों का प्रयोग रचना को आकर्षक बनाने का कार्य करता है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता' कहनेवाले देश में 'हंसा आएगी जरूर' दर्पण दिखाने का कार्य करता है, जहाँ हर रोज छोटी–छोटी शिशुओं के साथ अमानवीय घटनाएँ देखने को मिलती हैं, वहाँ हंसा जैसी लड़की के साथ ऐसा व्यवहार बहुत आश्चर्यजनक नहीं है। उपन्यास में समाधान न प्रस्तुत किया जाना भी इसकी सामर्थ्य ही जान पड़ती है। यदि यह रचना कुछ लोगों को सचेत और जागरूक बना सके, तो सफल है।

हंसा आएगी जरूर (उपन्यास)
रश्मि प्रकाशन, मूल्य-१००/-

कविता

आदमी का लक्ष्य

डॉ. केवलकृष्ण पाठक
संपादक 'रवीन्द्र ज्योति' मासिक पत्रिका
आनंद निवास, गीता कॉलोनी, जींद, हरियाणा
मो0 9416389481

संयमित जीवन बिताना लक्ष्य है इंसान का
पर संयमहीन जीवन को बिताता आदमी
हो गया स्वाधीन है पर मानता पराधीन है
ऐसे वातावरण में खुश रहना चाहता आदमी
आज तो लगता है ऐसा आदमी निस्वार्थ है
धोखा दे के राज्य करना चाहता है आदमी

लगता है जैसे आदमी हर हाल में रहता है खुश
पर विवश हो जिंदगी के दिन बिताता आदमी
ढेर सारी वस्तुएँ हैं ऐस–ओ–इशरत के लिए
पैसा पानी की तरह ही है बहाता आदमी
झोंपड़ी में जाके देखा तो यही लगने लगा
भूख से पीड़ित हुआ रोता चिल्लाता आदमी

वार्ता

नवगीत साहित्य का यथार्थ

डॉ. जयशंकर शुक्ल

अनिल कुमार पाण्डेय : आपने अपने काव्य–लेखन की शुरुआत कविता से प्रारंभ किया है। यह आपके साहित्यिक यात्राओं से स्पष्ट होता है, क्या यह पूर्णतया सत्य है?

अनिल जी रचनाकार की शुरुआत देखने की प्रक्रिया में दो आयाम आते हैं–पहला प्रकाशन, दूसरा लेखन। आपने मेरी रचनाधर्मिता के क्रम को जानने के लिए प्रकाशन का सहारा लिया है और पाठक, शोधार्थी, आलोचक–ये सभी इसी तरह से अपना मंतव्य स्थापित करते हैं। अनिल जी आपने इस वार्तालाप के माध्यम से मुझे वह सत्य सामने लाने का अवसर दिया है, जो शायद ही सामने आ पाता। भाई मेरे द्वारा लिखी गई पहली पुस्तक गद्य विधा के उपन्यास रूप में रही है, जिसका नाम 'अधूरा सच' रहा तथा यह सन् 1986 की गर्मियों की छुट्टियों में लिखी गई। इसका प्रकाशन अब यानी 2016 में लगभग तीस साल बाद संभव हो पाया है। कवि बनने की चाहत, प्रकाशन की लिप्सा तथा गोष्ठियों में प्रस्तुतीकरण की अभिलाषा ने कविताओं को रचने तथा प्रकाशित करवाने की ओर प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप 2005 में प्रथम काव्य संग्रह 'किरण' के प्रकाशन के बाद काव्य विधा में प्रकाशित लगभग सात पुस्तकें मेरे प्रोफाइल में जुड़ चुकी हैं।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत की तरफ आपका रुख कैसे हुआ?कहीं ये भाव तो नहीं था कि इस नवीन विधा में अन्य विधाओं की अपेक्षा स्पेश अधिक है, प्रसिद्धि अधिक है?

मित्र आपके मेरे अंदर तक जाकर अतीत को एक बार पुनः सामार कर रहे हैं। मैं मूलतः गीतकार हूँ और नवगीत के परिष्करण की साक्षी है। प्रारंभिक तुकबंदियों में बड़े–बड़े बहर की लंबी कविताएँ मैं लिखा करता था। वार्णिक और मात्रिक का भेद जानने के बाद उनकी गणना करने की प्रक्रिया को जाना व समझा। अब बहर अपेक्षाकृत छोटे और संतुलित होने लगे। मुखड़ा, अंतरा और टेक को अच्छी तरह जान और समझ लिया। इनमें अन्त्यानुप्रास हेतु शब्द अक्षर या ध्वनि की परिभाषा और भूमिका को आत्मसात करते हुए शिल्प की विविधता व विलक्षणता से अच्छी तरह परिचित हुआ। अब मात्राओं की संख्या पूरे गीत में एक जैसी रखी, मुखड़े व अंतरे में अलग–अलग भी रखी। मित्र ये रही रूप (बतंजि) की बात, जिसे शैल्पिक विधान भी कहा जाता है। शिल्प में मंझ जाने के बाद कथ्य (जमगज) की बात आती है, जहाँ विविधता रचनाकार की रचना प्रक्रिया को अलग आयाम प्रदान करती है। नई कविता की भाँति उसके उद्भवकाल से ही (नई कहानी, नया नाटक, नया निबंध एवं नवगीत (नये गीत) का भी उद्भव माना जाता है। ये बहस की बात है कि वे कौन से कारण रहे, जिनके परिप्रेक्ष्य में विगत 70 सालों से नवगीत को हिन्दी काव्यधारा में हाशिए पर डाल दिया गया। अनिलजी! इस समय नवगीत अपने चौथे चरण में विकास की यात्रा कर रहा है। एक गीतकार द्वारा नवगीत को पकड़ना, साधना एवं रचना करना कठिन अवश्य है, असंभव नहीं। निरालाजी के कथन 'नव गति नव लय ताल छंद नव' को युगबोध समकालीनता एवं रचनाधर्मिता के आधार पर गीतकार द्वारा साध लिया जाना, उसे नवगीतकार बनाता है। आश्वस्ति और प्रसन्नता का विषय है कि मैं ऐसा कर पाया हूँ। गीत नवगीत में एक रचनाकार अपने मंतव्य को मर्यादित ढंग से व्यक्त कर सकता है। मैंने नया शिल्प, नई शैली, नये रूपक, नये कथ्य, नये बिम्ब, नये प्रतीक, प्रस्तुत– अप्रस्तुत विधान की नयी परिणति के साथ नवगीत लिखे, जिनके लिए मेरी रुचि, रुझान, अभिवृत्ति जिम्मेदार है न कि स्पेश या प्रसिद्धि को ध्यान में रखकर ऐसा करने का प्रयास किया गया हैं

अनिल कुमार पाण्डेय : कविता से नवगीत में आगमन एक साहित्यिक यात्रा का दिग्दर्शन कराता है। यह युग छंदमुक्त कविता था, यह जानते हुए भी आप छांदस कविता की तरफ क्यों उन्मुख हुए?

अनिलजी! मेरा लेखन मूलतः रागात्मक रहा है। मैं मूलतः छंद की अवधारणा का पोषक हूँ, आपका प्रश्न युग परिवर्तन को रेखांकित करनेवाला है। मित्र उत्तर छायावाद के समानांतर प्रगतिशील काव्यधारा, प्रयोगवादी काव्यधारा, नई कविता आंदोलन या समकालीन काव्यधारा के प्रवर्तक कवि उत्कृष्ट गीतकार थे। उनके द्वारा न केवल हिन्दी साहित्य के काव्यरूप में एक नवीन आंदोलन का सूत्रपात किया गया, जिसके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को विश्व साहित्य से जोड़ना चाहा, बल्कि उन्होंने गीत से नवगीत तक की विधा के प्रारंभिक दौर से सशक्त हस्ताक्षर थे। अगर उनका कहीं विरोध था, तो वह रुढ़ियों, परंपराओं एवं मच से था। जितना उन्होंने छांदस रचनाकारों व उनकी रचनाधर्मिता की, प्रत्युत्तर में छंदधर्मी रचनाकारों को कोसने में कोई कसर नहीं रखा। हमारा उस समय अपने वैयक्तिक हित, अस्मिता एवं विभिन्नता को परे रखकर समग्र रूप से हिन्दी साहित्य की काव्यधारा का अमिट योग था, पर अफसोस हम ऐसा न कर सके। अनिलजी! यदि हम ऐसा कर पाते तो नवगीत की जो ऊँचाई आज हम पाँचवें चरण में देख पा रहे हैं, वह ऊँचाई पहले या दूसरे चरण पचास या साठ के दशक में प्राप्त कर पाते।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत व नयी कविता में क्या भेद हो सकता है, क्या यही भेद पारंपरिक गीत व नवगीत में भी है?विषय व कथ्य के आधार पर स्पष्ट करें?

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत न नयी कविता दोनों एक ही विधाएँ अपनी पारंपरिक मान्यताओं से मुक्त होने के लिए संघर्ष करती नजर आ रही हैं, भावपक्ष से लेकर कलापक्ष के इस संघर्ष पर आपके क्या विचार हैं?

नई कविता एवं नवगीत हिन्दी काव्यधारा के नवीनतम परिदृश्य में बिल्कुल नये है। इनके प्रारंभ के साथ इनके लेखन एवं इनकी आलोचना के लिए विधान रचे गए, जहाँ लेखन के लिए विषय भाषा–शैली, शब्दावली, नये मुहावरे और बिम्बों–प्रतीकों का नये परिवेश में दिग्दर्शन किया गया, वहीं इनकी आलोचना के लिए नए उपकरणों (जववसे) का भी निर्माण किया गया, जिनके आधार पर साहित्य समृद्धि की ओर अग्रसर हो सके। इसी तरह नवगीत में भी इसके कथ्य एवं रूप के विभिन्न विधानों की संरचना की गई। आलोचना के उपकरण यहाँ भी विकसित किये गए, लेकिन खेद का विषय रहा कि नवगीत ने अपने लिए आलोचकों की रिक्तता देखी। नई कविता के आलोचक अपनी बढ़ाई सीमा में ही व्यापार करते रहे। नवगीत के विकास, शोध एवं विस्तार में अपेक्षाकृत संभावना नहीं देख पाने का सबसे

बड़ा कारण इस विधा में आलोचकों का अभाव रहा है, जिसके कारण चर्चा–परिचर्चा प्रभावित हुई। सत्तर के दशक में विश्वनाथ द्वारा लिखे गये नवगीत पर सकारात्मक आलोचक–निबंध में बड़े पैमाने पर चर्चा–परिचर्चा की शुरुआत की। नवगीत में आलोचक न होने का एक बड़ा कारण और भी है कि नवगीतकार विधा से भी ऊँचे हो गये। विधा की श्रेष्ठता की जगह पर रचनाकार श्रेष्ठता ने व्यक्ति पूजा को आगे बढ़ाया, परिणामत: यह हुआ कि किसी रचना पर कोई टिप्पणी उस व्यक्ति पर टिप्पणी मान ली जाती थी और वो नवगीतकार गिरोहबंद होकर आलोचक के पीछे पड़ जाते थे। हारकर वह आलोचक अपने लिए नए ठाँव की तलाश कर लेता था। अनिलजी! इसका सबसे बड़ा शिकार मैं स्वयं हुआ हूँ।

हर विधा में समझ के साथ परिवर्तन आना आवश्यक है, भावपक्ष और कलापक्ष दोनों एक दूसरे से अंतर–संबंधित हैं। ऐसे ही रचना और रचनाकार दोनों संबंधित होते हुए भी पृथक अस्तित्व रखते हैं। यह अस्तित्व की लड़ाई है मित्र! आदिकाल से परिवर्तन समय की माँग है, जिसने अपने को जितने समय के अनुरूप बना लिया, देश–काल व वातावरण द्वारा स्वीकार किया गया, अन्यथा पीछे छूट गया।

अनिल कु मार पाण्डेय : रचनाकार एवं रचना विधा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रचना विधा अपने सृजन कर्ता को पहचान, सम्मान, प्रतिष्ठा प्रदान करती है। इस तरह से ऐश्वर्य धारक से बड़ी ऐश्वर्य प्रदाता हुई, जबकि वास्तविकता इसके उलटा है। रचनाकार साधनावस्था से चलकर सिद्धावस्था तक पहुँचते–पहुँचते स्वयंभू बन जाता है। भले ही विधा ने उसे जन्म दिया हो, पाला हो, पोषा हो, नई उपाधियाँ प्रदान की हों, एक समय के बाद वह रचनाकार रचनाविधा का जनक बन जाता है। ऐसे स्वनामधन्य स्वयंभू गीत ऋषि रचनाकारों का नाम मैं जानता हूँ, जिन्होंने अपने जीवन में चाहे जितने समझौते किये हों, परन्तु आज वे देवराज इन्द्र के सिंहासन पर विराजमान हैं, जिनके खिलाफ या जिनकी रचना पर किसी भी तरह की टिप्पणी टिप्पणीकार के लिए आत्महत्या जैसी है।

रचना के स्तर पर ये स्वयंभू गीतकार, नवगीतकार स्वयं को दोहरा रहे हैं। ये स्वयं को शिखर पर होने की घोषणा करते हैं और प्रायोजित लिखवाकर, छपवाकर अपने मुहीम को पुष्टि प्रदान करते हैं। इन्हें अलग करना किसी पराशक्ति के हाथ में हो सकता है, हमारे लिए यह कठिन है।

अनिल कु मार पाण्डेय : वैश्विक समस्याओं को लेकर नवगीतकार कितने सजग हैं, क्या यह प्रवृत्ति समय के साथ आगे बढ़ रही है अथवा हतोत्साहित हो रही है?

वैश्विक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना आज के रचनाकार को अति आवश्यक है, क्योंकि आज विश्वग्राम की अवधारणा रूप ले रही है, जो इससे एकाकार नहीं कर पा रहे हैं, शायद कल को उन्हें याद रखना मुश्किल हो जाए। व्यक्ति की पहचान उसका काम है, न कि रुतबा। रचनाकार को उसके कथ्य में विविधता श्रेष्ठ बनाती है। आज का समाज समस्यामूलक समाज है। कवि का कार्य अनादिकाल से न सिर्फ समस्याएँ उठाना रहा है, बल्कि कई विश्व कवियों ने अपने–अपने ढंग से समस्याओं का समाधान भी दिया है। हम नवगीतकार इस विषय में बहुत पीछे हैं। हम सम्राट अशोक के वैभव का गायन तो करना चाहते हैं, पर परमाणुविक विभीषिका हमारे लेखन–केन्द्र में नहीं आती। हम चाँद पर जाना तो चाहते हैं, पर धरती की खुशबू हमारे लेखन के केंद्र में नहीं आ पा रही है।

अनिलजी प्रवृत्ति का आगे बढ़ना या हतोत्साहित होना परिवेश निर्माण पर निर्भर है, जिसके लिए कोई भी प्रयास नहीं किया जा रहा है।

अनिल कु मार पाण्डेय : नवगीतकारों ने सदैव राजनैतिक चेतना व युग चेतना को अपने काव्य का हेतु बनाया है। यहाँ पर उनका स्वर विद्रोही होता है, ऐसा क्यों है?

जब भी कोई रचनाकार अपने मन के भावों को शाब्दिक परिणति देता है, तो ऐसी स्थिति में उसकी वैचारिक विभिन्नता उसके कथन का हेतु बनती है, ऐसें में एक रचनाकार अपने आस पास हो रही घटनाओं से अप्रभावित रहे, ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता। हर व्यक्ति कुछ और होने से पहले एक व्यक्ति है, उसका एक समाज है, जहाँ वह अपने कार्य–व्यवहार निष्पादित करता है। जन चेतना इकाई के रूप में उस व्यक्ति के भी अधिकार प्रभावित होते हैं, अत: टिप्पणी स्वाभाविक है। इसीलिए राजनैतिक चेतना युग की माँग होती है। राजनैतिक चेतना में इसे प्रभावित करनेवाले कारक सामाजिक ताने–बाने से ही निकलते हैं, जिनका हर व्यक्ति एक सदस्य होता है। रचनाकार चूँकि ज्यादा संवेदनशील होता है, संवेदनशीलता व्यक्ति के व्यवहार में परिलक्षित होती है, जो रचनाधर्मिता को प्रेरित करती है। चूँकि विकृति और विद्रूपता का कारण क्षुब्ध मन:स्थिति से निकालनेवाली पंक्तियाँ विद्रोहजनित होती हैं, इसलिए सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा।

अनिल कु मार पाण्डेय : नवगीत विधा में नारी रचनाकारों की कमी पर आप क्या कहेंगे?क्या यह विधा कथ्य व रूप में उन्हें आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखती?

पारंपरिक शिल्प, शैली एवं कथ्य में गीत जितना मोहक व आकर्षक है, प्रयोगवादी शिल्प, शैली एवं कथ्य में नवगीत उतना ही प्रायोगिक। स्त्री रचनाकार, पुरुष रचनाकार वास्तव में हमारा भ्रम है। सच्चाई यह है कि रचनाकार, रचनाकार होता है, वह स्त्री अथवा पुरुष नहीं होता। यदि ऐसा होता तो हमारे हिन्दी साहित्य में रचनाकार नायक अथवा नायिका के स्वर में एक साथ बात करते हैं। पुरुषवादी मानसिकता, उत्तर आक्रामकता स्त्री रचनाकारों में भी देखी जा सकती है और इसी तरह स्त्री जन्य कोमलता, मृदुलता, सहजता पुरुषों कथ्य एवं भावों में महसूस की जा सकती है। नवगीत में रचनाकार स्त्री हों, वो कम हैं, शून्य नहीं।

अनिल कु मार पाण्डेय : ग्राम्य चेतना व ग्राम्य दर्शन आज के कवियों का प्रिय विषय है, जबकि लिखने वाले कवि शहरी हैं, क्या वे गाँवों के चित्रण में वस्तुनिष्ठा रख पाते हैं?

भारत गाँवों का देश है, जो तेजी से कस्बों, शहरों एवं महानगरों के देश में बदलता जा रहा है। यहाँ गाँव के युवा रोजगार की तलाश में शहरों की ओर रुख करते हैं, यही युवा कालांतर में इंजीनियर, डॉक्टर, प्रशासक, प्रोफेसर, वैज्ञानिक आदि के साथ–साथ लेखर और कवि भी बनते हैं। अब चूँकि उनका बचपन, किशोरावस्था गाँव में बीता है, इसलिए वह यादें उसके साथ आजन्म रहती हैं। एक घटना बताऊँ–आपको 2013 ई0 में चैम्बर ऑफ कामर्स मेरठ शहर में एक पुस्तक लोकार्पण में मुझे विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का अवसर मिला। पुस्तक का शीर्षक था–'गाँववाला घर' तथा रचनाकार थे–शिवानंद सिंह 'सहयोगी'। लगभग दो सौ विद्वान रचनाकारों के मध्य अपना आलोचनात्मक आलेख पाठ करते हुए मैंने 'सहयोगी' जी से कुछ प्रश्न पूछे–आप गाँव से बाहर आजीविका के संदर्भ में शहरों में कब प्रवास कर रहे हो, गाँव वर्ष में आपका कितनी बार जाना होता है?गाँव की पुरानी धरोहरों को आप किसी रूप में पाते हो?क्या आज भी गाँव में कुएँ, पनघट, तालाब, मंदिर आदि उसी पुरानी स्थिति में हैं?खेतों, बागों की क्या स्थिति है?जवाब में उन्होंने प्रत्याशित अनभिज्ञता जाहिर की एवं

अकस्मात् बोल उठे–मैंने तो इस तरह से सोचा ही नहीं था।

अब बारी मेरी थी, संवाद रोचक था और पराकाष्ठा पर था। महोदय! आपने जिस गाँव के विषय में लिखा है, वह आपमें जी रहा है, आपने कभी उसमें जिया था। आज गाँव का वह पुरातन स्वरूप या तो घुट–घुटकर जी रहा है अथवा दम तोड़ चुका है। चौपालों पर अब भजन, कीर्तन, प्रहसन, प्रवचन नहीं होते, बल्कि हर बच्चा अपने मोबाईल के साथ अपनी ही दुनिया में जी रहा है। व्यक्ति का अपना सम्मान बहुत बढ़ चुका है और वह किसी को भी कुछ नहीं समझता, रिश्ते बौने हो रहे हैं। सहयोग की भावना खत्म हो रही है, अपनत्व स्वार्थ की बलिवेदी पर बलि चढ़ रहा है। ऐसे में ग्राम चेतना या ग्राम उन्मुख रचनाओं या रचनाकारों की प्रतिबद्धता संदेह के घेरे में है।

अनिल कु मार पाण्डेय : आपने अपने नवगीत संग्रह–'तम भाने लगा' में विकृत होती महानगरीय संस्कृति पर कलम चलाई है। यह कैसे संभव हो पाता है?

एक रचनाकार के लिए अपने परिवेश से जुड़ाव जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी घटनाक्रम व उसके परिणाम पर दृष्टिपात करना है। मैं पिछले बीस सालों से दिल्ली महानगरों में रह रहा हूँ, इसके पहले साढ़े छब्बीस साल जन्मस्थान जनपद इलाहाबाद के गाँव सैदाबाद में बिताए हैं। अब मेरे सामने अपने लिखने के केन्द्र में वर्तमान और अतीत का कश्मकश अक्सर चलता रहता है। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं, कविता, कहानी, लघुकथा, संस्मरण आदि में मेरे गाँव की मेरी यादें साकार रूप से चित्रित व अंकित हैं। नवगीत विधा में नवाचार के आग्रह को देखते हुए मैंने महानगरीय संस्कृति पर अपनी बेबाक कलम चलाई है। पेशे से शिक्षक होने के नाते मेरी दृष्टि त्रुटियों पर अधिक जाती है, अतः स्वाभाविक से विकृतियों को अपने काव्य का मूल स्वर बनाया है।

अनिल कु मार पाण्डेय : यथार्थ सम्प्रेषण व काल्पनिकता में समन्वय कैसे रख पाते हैं?कौन किसी विधा में आप यथार्थ को अधिक अच्दाई तरह अभिव्यक्त कर पाते हैं?

साहित्य रचना यथार्थ व काल्पनिकता का संगम है। कोरा यथार्थ नीरस व ऊबाउ होता है तथ काल्पनिकता आकाश– कुसुम होती है। जीवन में दोनों का संतुलन व समन्वय आवश्यक है, हम रचनाकार हैं, सृजन हमारी पहचान है, जिसमें किसी के निजी व गोपन पलों को उद्घाटित करने का अधिकार हमें नहीं है। पर विषय चयन, परिवेश, नाम, घटना व्यक्ति का नाटकीय रूपांतर देकर हम उस बात को सहजता से व्यक्त कर सकते हैं अनिलजी! यथार्थ परंपरामूलक होता है, परिवर्तन इसका दूसरा नाम है। एक लेखक को इस बिन्दु पर पूरी तरह सतर्क रहने की जरूरत है। उसे अपने व अन्य के जीवन से जुड़ी घटनाओं को उद्घाटित करने से बचना चाहिए, जहाँ यह बात सत्य है, वहीं यह भी ध्रुव सत्य है कि समष्टि की समस्याओं को सामने लाने के लिए घटनाक्रम का चित्रण वर्जित नहीं है।

मूलतः मैं नवगीतकार हूँ। प्रत्येक कवि अपने लिए विधा का चयन स्वयं करता है, इसी प्रकार प्रत्येक विधा कथ्य केन्द्रित होती है। मैं अपने द्वारा रची जा रही समस्त विधाओं के सारे रूपों में स्वयं को सहज पाता हूँ।

अनिल कु मार पाण्डेय : समकालीन कविताओं व साहित्य की अन्य विधाओं में समकालीन विमर्शों पर खूब चर्चा–परिचर्चा हो रही है; क्या नवगीत विधा में भी यह चर्चा मूर्तमान है?

समकालीनता साहित्यिक चेतना का प्राण है। अतीत का महिमामंडन और भविष्य का कल्पित स्वरूप साहित्य को साहित्य नहीं रहने देता। समकालीनता समय सापेक्ष है, यह किसी एक युग का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि यह वर्तमान का चित्र उपस्थित करता हैं, वहीं रचनाकार कालजयी एवं युग प्रवर्तक है, जो अपने युग को जीता है। समकालीनता हमें न केवल अद्यतन रखती है, बल्कि अतीत से परिचय कराकर भविष्य का खाका भी खींचती है, हमें विचार, व्यवहार, तुलना, कार्य, परिवेश व भाषा के स्तर पर समकालीन बने रहना होता, तभी हम अपने रचनाधर्म को अच्छी तरह निभा पायेंगे।

अनिल कु मार पाण्डेय : नवगीत, गीत की एक विधा है या भिन्न रूप से स्वतंत्र विधा; क्या स्वयंभू नवगीतकार अपने को विशेष दर्शाने के लिए नवगीत का आश्रय नहीं ले रहे हैं?

आपके इस प्रश्न का उत्तर हमें पूर्व में विस्तार से दिया है। हिन्दी साहित्य की सारी विधाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। नवगीत में नव विशेषण के साथ गीत का जुड़ाव इसे गीत के अगली पंक्ति की रचनाओं में सम्मिलित कराता है। नवगीत बहुविध होते हैं, नवीनता के परिचायक होते हैं। शिल्प, कथ्य एवं प्रवाह में नवता के आग्रही होते हैं। इतना सब कुछ होने पर भी यहाँ बोझिल भाषा, जटिल बिम्ब चमत्कार की प्रत्याशावाले बिम्ब वर्जित हैं। खेद का विषय है कि कुछ तथाकथित नवगीत प्रवर्तक कवि तत्सम शब्दावली के साथ बोझिल बिम्बों एवं चमत्कारिक प्रतीकों के माध्यम से स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की जुगत में लगे रहते हैं।

अनिल कु मार पाण्डेय : हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आपने कुछ लिखा व कहा है, नवगीत विधा में सक्रियता व शीर्ष नवगीतकार के रूप में आप कैसे स्वयं को स्थिर रख पाते हैं?

हिन्दी साहित्य की विधाएँ हमारे लिए अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम के रूप में हैं। गद्य एवं पद्य दोनों प्रमुख विधाओं के अनेक रूपों में अभिव्यक्ति देने का अवसर मुझे नियति ने प्रदान किया है, मैं उसके लिए उसका आभारी हूँ उन पाठकों का, आलोचकों का जिन्होंने आवश्यकतानुसार मुझे मेरी कमियाँ व विशेषताएँ दोनों बतलाते हुए प्रेरित किया है। पांडेयजी आपने मुझे इस अपने उन सत्यों के उद्घाटन का मंच प्रदान किया है, जिन्हें मैं कहीं और अभिव्यक्त नहीं कर सकता था। इसके लिए मैं आपका अति आभारी हूँ। अभ्यास करते–करते विभिनन विधाओं में अपनी आत कहने का हुनर विकसित किया जा सकता है और अभी उस प्रक्रिया में चल रहा हूँ।

नवगीतकार के रूप में मैंने लगभग दो दशकों का समयांतराल जिया है। अपने पूर्ववर्तियों को पढ़ा भी है और उनपर लिखा भी है। समकालीन के साथ भी मेरा ऐसी ही भूमिका रही है। इस कार्य ने मेरे अंदर सीखने की एक ललक पैदा कर दी तथा साथ ही साथ इस कृत्य ने मुझमें एक आलोचनात्मक दृष्टि का सूत्रपात भी किया है।

मैं नवगीत विधा की पाठशाला का एक विद्यार्थी हूँ और अब भी सीख रहा हूँ, इससे अलग कुछ भी कहना मुझे संकोच में डाल रहा है।

अनिल कु मार पाण्डेय : 'तम भाने लगा' संग्रह की चर्चा–परिचर्चा ने आपको एक उत्तम मुकाम दिया है; अपनी आगामी योजनाएँ एवं कृतियों के बारे में कुछ बताएँ?

'तम भाने लगा' मेरे नवगीत का नवीनतम संग्रह है। हालाँकि इस संग्रह का प्रकाशन दो वर्ष पूर्व अर्थात् 2015 में हुआ। 'तम भाने लगा' एक ऐसा संग्रह है, जिसपर अनेक मंचों पर चर्चा परिचचा हुई है और अब भी हो रही है। आकाशवाणी दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ स्टेशन पर शब्द–संसार में इसकी समीक्षा की जा चुकी है। दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क पर भी डॉ. अमरनाथ 'अमर' के निर्देशन में पत्रिका कार्यक्रम के अंतर्गत 'तम भाने लगा' की

समीक्षा प्रसारित हो चुकी है। डेढ़ दर्जन से ज्यादा आलोचनात्मक आलेख इस पुस्तक का अबतक लिखे जा चुके हैं, जिन्हें संपादित कर 'तम भाने लगा' के मौजूदा कलेवर से दुगुने कलेवर का ग्रंथ छापा जा सकता है। संपादक के रूप में यदि आप हों तो मुझे खुशी होगी। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी इसकी समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

आगे की योजनाएँ नियति के अधीन हैं। मैं माध्यम हूँ, कर्ता नहीं।

अनिल कु मार पाण्डेय : नये रचनाकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे? आज का रचनाकार रातोंरात महान व श्रेष्ठ हो जाना चाहता है; क्या यह संभव है?

अनिलजी! मैं स्तब्ध हूँ, आपने मुझे पुराना कैसे मान लिया? भाई साहब! वे कौन–से मानक हैं, जिनके आधार पर आप नये–पुराने की पहचान करते हैं? मैं साहित्य रूपी उपवन का सबसे अदना पौधा हूँ। अब आप मुझे कैसे इतना वरिष्ठ बना रहे हैं, मेरी समझ से परे है। चलिए इसपर एक बार फिर से विचार करिएगा।

आज का रचनाकार मेहनत पर नहीं, व्यक्ति–पूजा पर विश्वास करता है। शॉर्टकट की तलाश में वह नए शीर्ष गढ़ने की ओर प्रयत्नशील होता है। यह अफसोस जनक है। संसार में परिश्रम ही एकमात्र सफलता की कुंजी है। इस बात को जितनी जल्दी मान लिया जाए, उतना ही भला साहित्य का भी होगा और साहित्यकार का भी होगा। मैं अपने साथियों से इतना ही कहना चाहूँगा कि वह सदैव सीखने को तत्पर रहे और जितना हो सके पढ़े।

कविताएँ

सावनी बयार

मीनाक्षी छाजेड़
चंडीतल्ला लेन
कोलकाता

समर्पित हो उठा मन
भाव भीना किया वंदन
मुग्ध होकर कह उठे
कोटि कोटि तुम्हें नमन
लहराये हुए आंचल से
सुमन–सुरभि यों बिखरी
शीतलता की फुहार देकर
पुलकित मुझको कर चली
उठ चली तरंग उमंग की
तुरंग की गति लय थी
छद्मवेश में मुझे मिली
वह अनुपम रूपावली
जलतरंग की ताल देती
सर्वव्याप्त मधुमासिनी सी
हिलोरें 'सावनी बयार' की
अस्तित्व मुझको दे चली

2. निश्छल कोश

उस अनोखी रात में
लावण्यमयी शबनम में भींगी
पारदर्शी बदली के घुंघट से
मोहित छवि देखी चंदा की
अलबेली थिरकन में बढ़ती
आँख मिचौली वह थी करती
सर्वसुधा की कमनीयता में
सर्वांग सुंदरी आलोकित होती
निस्तब्धता में था व्याप्त गुंजन
सर्व कौंधता कोलाहलपन
आत्मकेन्द्रित हो चला मन
हृदय से हृदय का हुआ मिलन
सूक्ष्म चेतना ने अनायास ही
विभ्रांति के जाले को तोड़ा
जौ सौंदर्य समझा चंदा का
क्या वह था उसका
वह तो स्वयं बेजान है
गह्वर अचेतन का पुतला
देखा जो महसूस किया वो
अंतरमन का 'निश्छल कोश' था

बेटी

महेन्द्र देवांगन 'माटी'
पंडरिया, कबीरधाम, छत्तीसगढ़
8602407353

भेद ना कर
बेटी बेटा समान
अपना मान
बेटी पढ़ती
विकास है गढ़ती
आगे बढ़ती
चुप रहती
सब कुछ सहती
सदा हँसती
काम करती
कभी नहीं थकती
ख्याल रखती
खुद पढ़ती
भाई को भी पढ़ाती
गाना सुनाती

आस

–महेश शर्मा धार, 224 सिल्वर हील कॉलोनी,धार (म.प्र.)
मो. 8236940201

चहक रही चिड़ियाँ और बोल रहा कागा
लगता पे बिरहन का भाग्य आज जागा
बिरहा का एक एक दिन, युग युग सा बिता
सारे जतन हार गये, प्यार नहीं जीता
शुष्क होते कंठों ने नीर क्षीर माँगा
लगता है बिरहन का भाग्य आज जागा
साजन घर आयेंगे मधुर मिलन होगा
दूर होगा दारुण दुख, पल पल जो भोगा
इसी आस पर मन का अवसाद भागा
लगता हे बिरहन का भाग्य आज जागा।

2. रात और तन्हाई

रात है और ये तन्हाई हैं, गहन उदासी सी छाई है
कितना धीरज रखे मेरा दिल, दुनिया भर की रुसवाई है
हर कोई आता धीर बँधाता, राह किसी ने ना दिखलाई है
कैद है बुलबुल सख्त है पहरा, मुश्किल सी अब तो रिहाई है
बिरहा की इस कड़ी धूप में, याद तेरी बस सुखदाई है
हमने सबका भला ही सोचा, फिर क्यों मुश्किल ये आई है
रात है और ये तन्हाई हैं।

अनजान

–डॉ. सीमा देवी एस.पटेल, खम्भाली, खेड़ा, गुजरात

मैं हूँ तुमसे अनजान
तुम कौन हो, कहाँ हो
कहाँ मिले, कब मिले
वही विचार कर रही हूँ
फिर भी तुमसे हूँ अनजान
तुमसे मिलने के सपने देखती हूँ
तुम कहाँ मिले वो जगह ढूँढ रही हूँ
तुम कैसे दिखाई देते होंगे उस बारे में सोच रही हूँ
फिर भी तुमसे हूँ अनजान
तुम्हारे माता–पिता कौन होंगे
तुम्हारा समाज क्या है
तुम्हें देखा नहीं तुम्हें देखना है
ऐसा मेरा दिल कह रहा है
फिर भी तुमसे हूँ अनजान
तुम देवपुरुष हो या पृथ्वीलोक के सामान्य पुरुष
तुम्हारे विषय में मैं जो कल्पना कर रही हूँ
तुम मेरे पति हो या प्रियतम इससे हूँ अनजान।

समीक्षा

रघुवीर सहाय की पत्रकारिता और दिनमान

डॉ. आर.के. नीरद, वरिष्ठ पत्रकार
कमलाबाग कॉलोनी, दुधानी,
दुमका मो.–8789097471

रघुवीर सहाय की गिनती स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता के उन दस प्रमुख संपादकों में होती है, जिन्होंने भारतीय पत्रकारिता, समाज और राजनीति को ठोस दिशा दी। रघुवीर सहाय हिन्दी पत्रकारिता और लेखन की उस वैचारिकता के पोषक है, जिसमें सामाजिक जीवन का गहरा चिंतन और दर्शन निहित है, इसलिए उनकी पूरी पत्रकारिता और लेखन कर्म आम आदमी के सरोकारों, चिंताओं और आकांक्षाओं से जुड़ा है। रघुवीर सहाय पत्रकार, संपादक, कहानीकार, कवि, नाटककार, समीक्षक, अनुवादक और विचारक थे। उन्होंने इन सभी विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनके समग्र लेखन का आयाम जितना व्यापक है, उनके विचारों की दशा उतनी ही स्पष्ट और समाज सापेक्षित है। जब भी रघुवीर सहाय के लेखन पर विमर्श होता है, इस सत्य की स्वीकार्यता निर्विवादित रहती है 'रघुवीर सहाय के लोग'[1] विषय पर आयोजित चर्चा में इस सत्य का विस्तृत उभार देखने को मिला। 'दिनमान' साप्ताहिक समाचार पत्रिका थी और रघुवीर सहाय इसके संस्थापक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के उत्तराधिकारी रूप में 1969 से 1982 तक इसके प्रधान संपादक रहे। इससे पहले उनके पास दैनिक 'नवजीवन' में उपसंपादक और सांस्कृतिक संवाददाता 'प्रतीक' के सहायक संपादक, आकाशवाणी के समाचार उपसंपादक, 'कल्पना' तथा आकाशवाणी के विशेष संवाददाता तथा 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली के विशेष संवाददाता के रूप में काम करने का सघन अनुभव था। 'दिनमान' में उनके पत्रकारीय जीवन का उत्कर्ष काल था और हिन्दी पत्रकारिता का भी यह बड़ा प्रयोगात्मक युग था। इस काल में सत्ता और भारतीय राजनीति में ऐसे बड़े परिवर्तन और प्रयोग हुए। वैश्विक स्तर पर भारत के राजनयिक संबंधों को लेकर भी यह काल महत्वपूर्ण रहा। कांग्रेस का विभाजन, संपूर्ण क्रांति, आपातकाल और गैर कांग्रेसी साझा सरकार और इस प्रयोग की विफलता इसी काल की बड़ी घटनाएँ थीं।

वरिष्ठ पत्रकार रामशरण जोशी कहते हैं–1965 से 1975 का युग हिन्दी पत्रकारिता के लिए नये अनुभव का काल रहा, इस दौर में राजनीति में गतिशीलता भी आयी और बिखराव भी शुरू हुआ। जाहिर है, इसका प्रभाव पत्रकारिता पर पड़े बिना नहीं रहा। जहाँ हिन्दी पत्रकारिता में वैचारिक पत्रकारिता की धारा बही, वहीं व्यवहारवादी राजनीति की पत्रकारिता की धारा भी दिखाई देती। पत्रकारिता दो खेमों में विभाजित दिखाई देती है। नेहरू की मृत्यु के बाद रहस्यवादी राजनीति के स्थान पर यथार्थवादी व्यावहारिक राजनीति की शुरुआत हुई। इस दौर का घटनाचक्र काफी तेज रहा। 1965 में भारत–पाक युद्ध हुआ, गैर कांग्रेसवादी ने राजनीति पर कांग्रेसी एकाधिकार तो तोड़ा, कांग्रेस का मिथकीय दुर्ग टूटा, उसका विभाजन हुआ, पूर्व राजाओं के विशेषाधिकार समाप्त किये गये, बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, प्रतिबद्ध या प्रगतिशील न्यायपालिका और प्रेस जैसे मुद्दों को लेकर बहसें चलीं। इस दौर में दिनमान के प्रकाशन ने हिन्दी पत्रकारिता में एक नया आयाम जोड़ा, इसने विचार और विश्लेषण को प्रमुखता दी।[2] रघुवीर सहाय के पत्रकारीय चिंतन में इन समस्त घटनाक्रमों के विश्लेषण के केन्द्र में आम आदमी था। रघुवीर सहाय पर केन्द्रित विमर्श के संग्रह 'पूर्वग्रह' की भूमिका में इसे स्पष्टता मिली, रघुवीर सहाय के लोग जिन्हें, वे 'लोग' कहकर और कभी–कभी रामदास, दयाशंकर, चंद्रकांत, रमेश, मुसद्दी, शांति, क्रांति, मोहन, कमला जैसे व्यक्तिवाचक नामों से पुकारते हैं, कौन और कैसे हैं?वे किस दुनिया के हैं।'[3]

चर्चित उपन्यासकार अलका सरावगी कहती हैं–'रघुवीर सहाय की चिंता का केंद्र वह आदमी है।'[4]

रघुवीर सहाय का यह दर्शन 'दिनमान' में उनके संपादकीय कर्म में पूरी प्रबलता से उभरा। दरअसल, रघुवीर सहाय उन चिंतकों में थे, जिनकी दृष्टि पत्रकारिता तटस्थता का नहीं, मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता की विधा है, इसके बिना कोई भी रचनाकार या पत्रकार न तो समाज को न ही विधा को कोई दिशा, कोई दृष्टि दे सकता है। इसलिए सहायजी के लेखन में वैचारिक दृष्टि बिल्कुल स्पष्टता से उभरी। इसमें सामाजिक विश्लेषण भी है और राजनीतिक संदेश भी। इसलिए कथाकार पंकज विष्ट कहते हैं–'रघुवीर सहाय एक राजनीतिक दृष्टि से प्रतिबद्ध थे और उन्होंने उस दृष्टि से समाचार के उन पक्षों को देखा है, जिसे आम तौर पर छोड़ दिया जाता था। वह घटना के पीछे की चीजों को देखने की कोशिश करते थे। इसलिए उनके 'दिनमान' की विशेषता थी कि उसमें सिर्फ समाचार या रिपोर्ट नहीं होती थी, बल्कि उसके साथ एक दृष्टि भी मिलती थी। इसलिए उन्हें वैसा प्रतिबद्ध पाठकवर्ग भी मिला। सहायजी ने साहित्य–संस्कृति को भी काफी महत्व दिया। फिल्मों पर उन्होंने जैसी सामग्री दी, वैसा काम न तो पहले कभी हुआ था और कभी बाद में हुआ। इसका कारण शायद यह भी हो कि उस दौर में वैसी फिल्में और वैसे लोग भी रहे हों, जो प्रेरक हों, लेकिन अगर यही कारण होता तो इसका असर अन्यत्र भी नजर आता, किन्तु आज सिर्फ 'दिनमान' में आने का श्रेय रघुवीर सहाय को जाता है।'[5]

एक वाकया है, किसी पाठक ने एक बार दिनमान में एक पत्र भेजा। इसमें उसके क्षेत्र की दर्दभरी कहानी थी। रघुवीर सहाय ने उस पत्र को ही दिनमान के आवरण पृष्ठ पर छाप दिया। उन्होंने ऐसे ही प्रयोगों के माध्यम से दिनमान जैसे राजनैतिक साप्ताहिक पत्र को गाँव और कस्बों से जोड़ा। दूसरी ओर उन्होंने वैचारिक पत्रकारिता को समृद्ध किया। रघुवीर सहाय ने 'दिनमान' के माध्यम से बहुआयामी सरोकारों की पत्रकारिता की तथा विश्लेषक पत्रकारों की एक नयी पीढ़ी को जन्म दिया। रामशरण जोशी ने तत्कालीन पत्रकारिता की विभिन्न धाराओं एवं व्यक्तियों की भूमिका की चर्चा करते हुए रघुवीर सहाय एवं दिनमान की विशिष्टता को इस तरह रेखांकित किया है–'जय प्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति, मुशहरी आंदोलन, अहमदाबाद का नवनिर्माण आंदोलन जैसी घटनाओं पर 'धर्मयुग' ने गहरी दृष्टि डाली। इन आंदोलनों पर लेख के साथ–साथ रिपोर्ताज भी छापे, बांके बिहारी भटनागर के उत्तराधिकारी मनोहर श्याम जोशी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' को एक नया चेहरा देने की कोशिश की। वे इसे जन सरोकार के करीब भी ले गये, लेकिन जोशी और भारती जोखिम वाली पत्रकारिता से बचते ही रहे। इस दृष्टि से 'दिनमान' की भूमिका निश्चय ही उल्लेखनीय कही जाएगी। 'दिनमान' के सरोकार बहुआयामी थे, उसके युवा आंदोलन, नक्सलबाड़ी आंदोलन, भूआंदोलन, भारत–पाक युद्ध, बंगलादेश का जन्म, राजस्थान का अकाल, औरत समस्या जैसे खुरदुरे मुद्दों को उठाया। 'दिनमान' ने विश्लेषक पत्रकारों की एक नयी पीढ़ी को जन्म दिया। इससे पहले की हिन्दी पत्रकारिता में वैचारिकता एवं

विश्लेषण की दृष्टि से रीतापन दिखाई देता है। अजेय और रघुवीर सहाय ने इस अभाव को ईमानदारी के साथ दूर किया। अर्द्ध अकादमिक पत्रकारिता के लिए दोनों संपादकों को याद रखा जायेगा।'[6]

रघुवीर सहाय की इन विशिष्टताओं एवं उनके संपादन काल के 'दिनमान' की उपलब्धियों का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि बाद के दौर की पत्रकारिता पर अधिकांश चर्चाओं में रघुवीर सहाय एवं 'दिनमान' का उल्लेख देखा जा सकता है। आउटलुक पत्रिका की समीक्षा कहती है–'हिन्दी में सिर्फ एक दशक पहले 'दिनमान' नाम की एक पत्रिका थी, जो अपने स्तर में किसी भी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के समकक्ष हुआ करती थी। अजेय, रघुवीर सहाय, मनोहन श्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे दिग्गज इससे जुड़े थे। हिन्दी समाज आज भी हर समाचार पत्रिका को उसी पैमाने पर तौलता है।'[7]

रघुवीर सहाय की टिप्पणियों की विशिष्टता पर रघुवीर सहाय रचनावली के संपादक सुरेश शर्मा लिखते हैं–'दिनमान' में रघुवीर सहाय की संपादकीय टिप्पणियाँ सिर्फ तत्कालीनता के आधार पर घटनाओं का विश्लेषण नहीं है। इसमें लोकतंत्र, समता और न्याय के मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। इसलिए भी उनकी गहरी प्रासंगिकता है।'[8]

रघुवीर सहाय अखबार के प्रबंधन में पत्रकारों की नैसर्गिक हिस्सेदारी के पक्षधर थे, इसलिए जब अखबारों के प्रबंधन एवं स्वामित्व संबंधी विधेयक लाये जाने की चर्चा हुई तो उन्होंने बड़ी बेबाकी से लिखा–'यदि सरकार को सचमुच अखबार की स्वतंत्रता की बहुत चिंता है, तो उसे विधेयक के प्रारूप में कहीं इस अवधारणा को स्थान देना चाहिए कि अखबार में काम करनेवालों को पूर्ण स्वामित्व की वर्तमान व्यवस्था का स्वस्थ विकल्प है।'[9]

जिस तरह के आर्थिक उदारीकरण के बाद और विशेष कर पिछले एक दशक में संपादकों ने अखबार के मालिकों के आगे घुटने टेक दिये और अपनी पूरी जमात को श्रमजीवी–मजदूर बना दिया, उसकी साजिश बहुत पूर्व से चल रही थी। मगर रघुवीर सहाय, राजेन्द्र माथुर और प्रभाष जोशी जैसे संपादकों ने प्रबल विरोध किया। उसी की बदौलत पत्रकारिता का उदात्त स्वतंत्र चरित्र बचा रहा। बाद के संपादकों में यह साहस नहीं रहा था या यूँ कहें कि उनमें स्वयं के पोषित होने का लालच अधिक था, जिससे न केवल मालिकों और उसके प्रबंधन के आगे नतमस्तक हो गये, बल्कि उनके पक्ष में पत्रकारों के आर्थिक जीवन की बेहतरी के राग अलाप पत्रकारिता को निस्तेज कर दिया। इन संपादकों के अपने लिए चाहे जो भी किया हो, उन साथियों को बड़ा नुकसान पहुँचाया, जिन्होंने उनपर भरोसा किया। इसका प्रभाव यह हुआ कि आज पूरी पत्रकारिता अखबारों में मालिकों के समक्ष आज एक चाकरी का जरिया भर रह गयी, जिसमें मूल्यों, सिद्धांतों और सामाजिक प्रतिबद्धताओं के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। रघुवीर सहाय ने इसकी आशंका तभी व्यक्त की थी और उस विधेयक का विरोध किया था, जिसमें औद्योगिक घरानों की अखबारों पर आर्थिक शिकंजे को मजबूत करने का प्रयास निहित था। सहायजी ने स्पष्ट रूप से लिखा था–'कौन हैं वे श्रमजीवी पत्रकार, जो पूँजी लगाकर हिस्सेदारी के अतिरिक्त हिससे खरीद सकेंगे?निश्चय ही इतना पैसा किसी स्वतंत्रचेता श्रमजीवी पत्रकार के पास हो, तो वह नौकरी करने को मजबूरी से ही न मुक्त हो लें?और जब वे हिस्से श्रमजीवी पत्रकार या कर्मचारी नहीं खरीदेंगे, तो किसी और को दे दिये जायेंगे, वे कौन होंगे?सरकार के एजेंट या मालिकों के?'[10]

हुआ वही, मालिकों के एजेंटों ने तो अखबारों के शेयर खरीदे, कुछ संपादक भी उस कतार में शामिल हो गये। स्पष्ट है कि मालिकों को ज्यादा लाभ दिलाने के लिए अखबार को पत्रकार उपलब्ध कराने की जगह सस्ते में कामगार उपलब्ध कराने की साजिश की, ताकि स्वयं अच्छे लाभांश पा सकें।

दरअसल, रघुवीर सहाय की चिंतनदृष्टि समाजवादी थी और राममनोहर लोहिया जैसे प्रखर विचारकों से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थे। संसद की रिपोर्टिंग के दौरान यह प्रभाव उनपर और गाढ़ा हुआ। कवि विष्णु खरे लिखते हैं–'संसद की रिपोर्टिंग ने रघुवीर सहाय की दृष्टि बदलकर रख दी, उन दिनों लोहिया संसद में दोपहर के सूर्य की तरह तप रहे थे। रघुवीर सहाय ने उनकी उठायी गयी सारी बहसों को सुना...पहले से ही अपार मानवीय सहानुभूति रखनेवाले प्रबुद्ध, साम्यवाद से प्रभावित रघुवीर सहाय पर संसदीय यथार्थ और लोहिया की प्रखर भारतीय मानवीयता तथा राजनीति का जो असर पड़ा, उसे अतिरंजित नहीं किया जा सकता।'[11]

रघुवीर सहाय ने स्वयं भी इसे स्वीकार किया है और बदलती पत्रकारिता को लेकर चिंता भी जतायी–'दुनिया बदल रही थी। पत्रकारिता की भी और साहित्य की भी कम–से–कम हमारे अपने दायरे में। मतलब कि मेरी अपनी अक्ल में, इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे शिक्षक तो लोहिया और दीपकजी थे, इसलिए कि उनसे बहुत मिलना–जुलना होता था, बहुत बातें होती थीं, संवाद होता था। हमारे लिए वे बहुत प्रकट व निकटस्थ संवाद के सूत्र थे। तो यह परिवर्तन आ चला था मेरे अंदर।'[12]

सुरेश शर्मा लिखते हैं–'पत्रकारिता के संबंध में रघुवीर सहाय की अवधारणा क्रांतिकारी थी।'[13]

चर्चित पत्रकार आलोक श्रीवास्तव ने इन्हें आदर्शों की अंतिम पराजित पीढ़ी की संज्ञा दी। इस त्रासदी के भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने बड़े बेबाकी से शब्दांकित किया, लेकिन एक पंक्ति यह भी जोड़ी–'हमने देखा था कि इसी बची हुई थोड़ी–सी जगह के बूते रघुवीर सहाय ने मध्यवर्गीय हिन्दी समाज के अंत:करण का आयतन बढ़ाने की कोशिश की थी।'[14]

स्वयं रघुवीर सहाय ने अपने इन संघर्षों की चर्चा की–'अखबारों में संघर्ष की सार्थकता की जगह उसकी चमत्कारिता को खबर बताना जरूरी हो गया है।'[15]

और एक अंतिम बात, आज की पत्रकारिता, लेखन और वैचारिकता में वामपंथी और दक्षिणपंथी, इन शब्दों की जो अराजकता है, उसका अनुमान रघुवर सहाय ने तभी लगा लिया था और सचेत किया था, 'वामपंथी और दक्षिणपंथी–इन शब्दों की जो अराजकता है, उसका अनुमान रघुवीर सहाय ने तभी लगा लिया था और सचेत किया था–'वामपंथी और दक्षिणपंथी शब्दों का इस्तेमाल करेंगे तो बहुत ही संभव है कि बहुत जल्दी किसी भी समय आगे जाकर आपको दुबारा अपनी भूल मान्यताओं को या तो बदलना पड़ जाएगा, ताकि इन शब्दों का अर्थ ठीक–ठाक बना रहे या फिर इन शब्दों को छोड़ देना होगा।'[16]

निष्कर्ष यह कि रघुवीर सहाय का पत्रकारीय जीवनकाल भारतीय पत्रकारिता और भारतीय राजनीति,दोनों के संघर्ष, प्रयोग, परिवर्तन, विघटन और नवनिर्माण के अत्यंत महत्वपूर्ण दौर का था, जिसमें उन्होंने आम आदमी, पत्रकारिता के मूल्यों और सामाजिक प्रतिबद्धताओं तथा पत्रकारों के हित के लिए (मार्गदर्शक की भूमिका में) सतर्क, समर्पित और सतत सक्रिय रहे।'दिनमान' को उन्होंने इसका आधार बनाया और इसे एक पत्रिका से ऊपर समकालीन पत्रकारिता के मूल्यों का प्रतीक बनाया।

संदर्भ ग्रंथ :

1. 'रघुवीर सहाय के लोग' विषय पर चर्चा, 23–24 मार्च, 1996,

भारत भवन, भोपाल
2. रामशरण जोशी, मीडिया विमर्श, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002,पृ.65
3. संपादकीय, 'यह अंक', पूर्वग्रह, भारत भवन, भोपाल, सितंबर–नवंबर 1996
4. अलका सरावगी, 'रघुवीर सहाय की पत्रकारिता : यथार्थ को समझने का एक माध्यम', शोधकार्य, कोलकाता
5. पंकज विष्ट, एक साक्षात्कार
6. रामशरण जोशी, मीडिया विमर्श, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
7. समीक्षा, 'आउटलुक साप्ताहिक : लंबे समय के बाद एक शुभ समाचार', समयांतर, दिल्ली, नवंबर 02, पृ.28
8. सुरेश शर्मा, 'समय के दृश्य', रघुवीर सहाय रचनावली, खंड 4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000,पृ.12
9. रघुवीर सहाय, 'स्वामी बादल', दिनमान, नई दिल्ली, 05.09. 1971
10. वही
11. विष्णु खरे, 'सीढ़ियों पर धूप में', पूर्वग्रह, भारत भवन, भोपाल, सितम्बर–नवम्बर, पृ.45
12. रघुवीर सहाय, 'विष्णु नागर,प्रयाग शुक्ल, मंगलेश डबराल और असद जैदी की साथ बातचीत', रघुवीर सहाय, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), 1993
13. सुरेश शर्मा, 'समय के दृश्य', रघुवीर सहाय रचनावली, खंड 4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000,पृ.13
14. आलोक श्रीवास्तव, 'पत्रकारिता का साम्राज्यवादी चेहरा', अखबारनामा, संवाद प्रकाशन मुंबई, पृ.103
15. रघुवीर सहाय, पतनशील पत्रकारिता अंग्रेजी से प्रतिमान उधार लेती है, रघुवीर सहाय रचनावली,खंड 4,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000,पृ.40–43
16. अशोक वाजपेयी, 'रघुवीर सहाय का स्वदेश', कविता का गल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997,पृ.78

ग़ज़लें

प्रो. शरद नारायण खरे,
महाविद्यालय मंडला (म.प्र.)
मो.–9425484382

वर्तमान का गीत

उजियारे को तरस रहा हूँ अँधियारे हरसाते हैं
अधरों से मुस्कानें गायब, आँसू भर–भर आते हैं
अपने सब अब दूर हो रहे, हर इक पथ पर भटक रहा
कोई भी अब नहीं है यहाँ, स्वारथ में जन अटक रहा
सच है बहरा, छल–फरेब है, झूठे बढ़ते जाते हैं
अधरों से मुस्कानें गायब, आँसू भर–भर आते हैं
नकली खुशियाँ नकली मातम, हर कोई सौदागर है
गुणा भाग के समीकरण हैं, छीनाझपटी घर–घर है
जीवन तो अभिशाप बन गया, मायूसी से नाते हैं
अधरों से मुस्कानें गायब, आँसू भर–भर आते हैं
रंगत उड़ी उड़ी मौसम की, अवसादों ने घेरा है
हम की जगह आज 'मैं' मैं है, ये तेरा वो मेरा है
फूलों ने सब खुशबू खोई, पतझड़ घिर–घिर आते हैं
अधरों से मुस्कानें गायब, आँसू भर–भर आते हैं।

केशव शरण
बनारस (उ.प्र.)
9415295137

परों के बराबर कदम हैं

परों के बराबर कदम हैं अभी
कि रोमांस के पथ सुगम हैं अभी
सहज लब्ध आनंद लो डूबकर
भरे प्रेमरस से सनम हैं अभी
अभी स्वप्न संसार के सुख बड़े
गहन उलझनें हैं न गम हैं अभी
दिन का पता है न निशि की खबर
मिलन के चरम हर्ष कम हैं अभी
मगन, मस्तमौला महा प्यार में
बिना फिक्र के एकदम हैं अभी
अगर सत्य है तो यही सत्य है
बचे जिंदगी के भरम हैं अभी
जिन्होंने मिलाया करम ही किया
मगर शेष उनके सितम हैं अभी
यूँ किसी को पसंद कर रक्खा
प्यार में आँख बंद कर रक्खा
मिल गया है उधार अम्बर
क्या सितारा बुलंद कर रक्खा
बँध रहा है कहाँ कहाँ किससे
किसी कदर मन स्वच्छंद कर रक्खा
जेल में डाल दे मुहब्बत की
इश्क के जुर्म चंद कर रक्खा
है अँधेरा जरा प्रकाश जरा
आ सनम दीप मंद कर रक्खा
बेकार हुआ मूड मजेदार हटाओ
बेनूर करे आँख न अखबार हटाओ
अन्याय मिटाया न, मिटायी न गरीबी
बरदाश्त करो और न सरकार हटाओ
जो रोज नया रूप धरे पक्ष बदलकर
अब और रहे पास न, किरदार हटाओ
गंभीर व निष्पक्ष रहा एक न चैनल
रीमोट लिये हाथ लगातार हटाओ
जनघोष करो या मशाले का समय है
अँधियार सहित आज कदाचार हटाओ।

लघुशोध

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवनचरित्र एवं आज का युग

डॉ0 छोटेलाल गुप्ता
भारतीय वायुसेना, तेजपुर (असम)
मो0–9085210732

भारतवर्ष के अन्तरिक्ष में एक सन्देश व्याप्त हुआ था– सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्य की विजय और असत्य का पराभव। नीति की जीत और अनीति की हार। सदाचरण का मस्तक ऊँचा और कदाचरण का शीश कटा। धर्म की विजय और अधर्म का नाश। अच्छाई की जय–जयकार और बुराई का अन्त। विजयादशमी का पर्व प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कुमार्गगामी रावण पर विजय प्राप्त की थी। श्रीराम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र और पुरुष श्रेष्ठ थे। पुरुष श्रेष्ठ इसलिए कि वे सत्य, शील और सौन्दर्य के प्रतिमान थे। एक मनुष्य की मर्यादा और उसकी अपरिमेय सम्भावनाओं से वे परिपूर्ण थे। वे मानव होते हुए भी नारायणत्व की उच्चता पर आसीन थे। नर से नारायण बनने की सहज उन्नत क्षमता उनमें थी। वे नीति के नियामक और परिपालक थे। वे सहज–सरल मनुष्य थे। वे धर्म प्रतिपालक थे। उनका विग्रह धर्म रूप ही था। रामो विग्रह धर्मः।

रावण स्वर्णमयी लंका का राजा था। वह ज्ञानी था, वेदवेत्ता था, पण्डित था। वेदज्ञ जब पथभ्रष्ट हो जाता है, तो उसकी मेधा विपरीत दिशा में अग्रसर होकर नकारात्मक सोचने और करने लगती है। रावण अपने समय का सर्वथा बुद्धिमान और बलिष्ठ व्यक्ति था। शिव–भक्त था। वह शिव ताण्डव का रचयिता था। वह दशानन था। कहते हैं उसके दस मुख और बीस भुजाएँ थीं। आज आश्चर्य होता है, दस मुख किसी व्यक्ति के कैसे हो सकते हैं?बीस हाथोंवाला व्यक्ति कैसा रहा होगा?वह धर्म को जाननेवाला था, पर धर्माचारी नहीं था। मनसा, वाचा और कर्म का जहाँ भेद होगा, व्यक्तित्त्व निष्प्रभावी होने और चरित्र स्खलित होने में देर नहीं लगती। धर्मो रक्षितः रक्षति।

रावण दस सिरों का प्रतीकार्य है। वह अत्यधिक बुद्धिमान था। किसी भी शब्द या वस्तु की व्याख्या वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा दस गुना बुद्धिमत्ता से करता था। बौद्धिक आधिक्य से वह परिपूर्ण था। ज्ञान का आधिक्य उपयोगी नहीं हो सकता, यदि विवेक का नियन्त्रण न हो। रावण सोचता था तो समझ के चरम तक चला जाता था। शब्द की व्याख्या अनायास ही दस गुना होकर प्रस्फुटित होती थी। उसके दूत जब उसे आकर यह सन्देश देते हैं कि राम ने समुद्र पर सेतु बनाकर समुद्र पार कर आने का मार्ग बना लिया है, तब उसके मुख से समुद्र शब्द दस पर्याय एक साथ उद्‌भासित होते हैं–

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु वारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस।।

यह रावण की सकारात्मक सोच है, जो बुद्धि की रज्जु के सहारे ज्ञान–मर्म के शिखरों तक पहुँचने की क्षमता रखता है। यही स्थिति शिव ताण्डव स्रोत की रचना में देखी जा सकती है। लेकिन यही बुद्धि जब टूटती है, तो दस गुना गहरी खाई में पहुँचा देती है। रावण की ऊर्ध्वमुखी सोच उसे ज्ञानी–पण्डित बनाती है। उसकी विपरीत या प्रतिकूल सोच उसे राक्षसों की कोटि में पटक देती है। ज्ञान तो बहुत है, विवेक गुम हो जाता है। विवेक के अभाव में सत्–असत् की पहचान ठीक–ठीक नहीं हो पाती और कुपंथ पर बढ़ते हुए विनाश की आशंका का साथ भी छूट जाता है। एक–एक कर दुर्गुण कुमार्ग पर धकेलते रहते हैं। नारी का अपहरण, चोर का कर्म, जटायु के रूप में धर्माचरित जीव की हत्या, परनारी का मोह, युद्ध की लालसा, अहंकार का आभूषण, बल–वैभव का अंधापन, स्त्री (पत्नी) की सीख का उपहास, साधु की अवज्ञा, नगर का विध्वंस, कुल का नाश और स्वयं का सर्वनाश करके ही रावण का चरित्र अपनी नियति और परिणति को प्राप्त होता है। मोह का अन्त, अहंकार का अन्त, अविवेक का अन्त, अधर्म का अन्त और असत्य का अन्त होता है।

सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा।।
वरूण कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहुँ न धीरा।।
भुजबल जितेहुँ काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं।।
जगत विदित तुम्हारी प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई।।
राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।।

यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। सत्, रज और तम गुण अपने–अपने अनुपात और प्रभाव से प्रत्येक जीव, वस्तु और मनुष्य को संचालित करते रहते हैं। ये तीनों गुण ही कभी बहुकोणीय और कभी दो ध्रुवीय स्थिति पैदा करते हैं। धर्म–अधर्म, जन्म–मृत्यु, गति–अगति, चेतन–जड़, प्रकाश–अंधकार, दिन–रात, कर्म– अकर्म, अच्छा–बुरा, गुण–अवगुण, मनुष्य–राक्षस तथा निर्माण– विनाश की अनुकूलता–प्रतिकूलता के रथ पर आरूढ़ यह सृष्टि चल रही है। पुण्य–पाप की अवधारणाएँ इन्हीं के सन्दर्भों से जन्मी हैं।

जड़–चेतन' गुण–दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत–हंस गुन गहहिं पय, परिहर बारि विकार।।

विधवा ने इस विश्व की संरचना जड़–चेतन, गुण–दोष मुक्त युक्त की है। इस विश्व में संत–हंस स्वरूप हैं, जो गुण रूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं तथा पानी रूपी विकारों को छोड़ देते हैं।

संतत्व की प्राप्ति बहुत कठिन है। अच्छे–अच्छे ज्ञानी और सिद्ध भी पूर्णतः विकार रहित नहीं हो पाते हैं, तब साधारण सांसारिकों की क्या कहें। इस संसार में सन्त–सा जीवन जीना यानी मनुष्यता का वरण करना है। नाना प्रकार के मोह जनित संशयों से मुक्त हो जाना है। परन्तु यह सरल नहीं है। संसार को समझकर उसमें विमुक्त होकर रहना घनघोर साधना से ही सम्भव है। साधु या सन्त या सज्जन कहलाना आसान है, संतत्व या सज्जनता का प्राप्य होना मुश्किल है। शिखर पर चढ़ना सम्भव है, शिखर पर पहुँचकर बहुत देर तक टिके रहना दुष्कर है।

'साधु कहावत कठिन है, ऊँचे पेड़ खजूर।
चढ़ै तो पीवै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर।।'

हम प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन रावण का पुतला जलाकर यह मान लेते हैं। कि बुराई का नाश हो गया। परन्तु देखने में यह आता है कि विश्व में बुराइयाँ और बढ़ रही हैं। सारा संसार आतंकवाद से त्राहि–त्राहि कर रहा

है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को ग्रसने पर तुला हुआ है। चीन और पाकिस्तान की भारत के साथ सामरिक उत्कंठा अशुभ है। एक ही राष्ट्र में धर्म, जाति, भाषा, प्रान्त के झगड़े आपसी सद्भाव और शान्ति को भंग कर रहे हैं, पारिवारिक कलहों में व्यक्ति का रामत्व सहमा हुआ है और रावणत्व ठठाकर हँस रहा है। नारी अभी भी शिक्षा से दूर है। उसका अपमान अपहरण और अवमान अभी बन्द नहीं हुआ है। आज भाई–भाई में अनबन है। संघर्ष और वैमनस्य की दीवारें उठ गई हैं। व्यक्ति स्वयं भी अशान्त और ईहामृग बनकर भटक रहा है। स्वयं के भीतर अनगिनत विकारों को पोषित करता हुआ वह प्रकारान्तर से अपने अन्तस में रावण को स्थान दे रहा है। तब फिर प्रतिवर्ष या प्रतिदिन पुतला जलाने से रामराज्य स्थापित नहीं होगा। जीवन में रामत्व का आग्रह होना चाहिए। प्रकाश को लाने में प्रयास करना होता है, अंधकार तो सहज फैल जाता है। जीवन को सँभालकर जीने में श्रम और समझ लगती है; मरण के लिए कुछ नहीं करना पड़ता है, वह तो असावधान को दबोचने में पीछे नहीं।

रावण प्रतीक है बुराई का, असत्य का, अनीति का, अहंकार का, स्खलित ज्ञान का, बौद्धिक अतिवादी नकारात्मकता का, कुचेष्टा के चरम का, एक ऐसे जीवन को–जो स्वर्णमय भवनों के बीच उद्वेलित और अशान्त रहता है। स्वयं की शक्ति पर जिसे भरोसा है, किन्तु एकदम–बहुत डरा हुआ है। विनय–पत्रिका में तुलसीदास ने रावण के और उसके कुल–कुटुम्ब की प्रतीकार्थों का उल्लेख किया है–

मोह दशमौलि, तद्भाव अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ठ विबुधान्तकारी।।
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद, मद–शूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निशाचर–निकर सहित षड्वर्ग गो–यातुधानी।।

लंका में मोहरूपी रावण, निवास करता है। अहंकार कुम्भकरण है। शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है। लोभरूपी अतिकाय, मत्सर रूपी महोदर, क्रोध रूपी देवान्तक, द्वेष स्वरूप दुर्मुख, दम्भरूपी खर, कपटरूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और मदरूपी शूलपाणि राक्षस है। रावण के इस दुष्ट महाराज परिवार के बीच में जीव रूपी विभीषण निवास करता है।

इस रूपक के प्रतीकार्थ जीवन के विस्तार और परिचालन के व्यापक अर्थ खोलते हैं। इस देह को हम सोने का पिंजरा भी कहते हैं। यह शरीर स्वर्णजटित–स्वर्णसज्जित लंका के समान ही है। रावण के दस शीश है। रावण स्वयं अर्थात् यह देहजनित जीवन मोह रूप ही है। मोह रावण है। उसके दस शीश–अहंकार, काम, लाभ, मत्सर, क्रोध, द्वेष, दम्भ, कपट, दर्प और मद के प्रतीक हैं। इन सबके बीच जीवरूपी विभीषण रहता है। जीवरूपी विभीषण का उद्धार श्रीराम अर्थात् सत्य–शील–सौन्दर्य की शरण में आकर ही सम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं– 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

इस संसार को अनेक प्रकार से देखा–समझा गया है। यह संसार ओस का मोती है, सुबह होते ही इसे मिट जाना है। यह काया गार–सी (ओले के समान) काची है, इसे थोड़ी देर में गल जाना है। यह बात ज्ञानी–अज्ञानी दोनों जानते हैं। यह नहीं है समझ जाने के बाद जीवन को मनुष्यता के तत्त्वों से भरते हुए संसार और समाज को गतिशीलता और परिवर्तनशील की सही दिशा दिखाना चाहिए। जीवन जीने के लिए है, सोते रहने या विनाश की ओर जाने के लिए नहीं। मरण निश्चित है, उसका आग्रह और जप ठीक नहीं। उससे निराशा और निष्क्रियता उपजती है। ये दोनों ही जीवन को जड़ बनाती है। जड़ता चैतन्य का गुण नहीं। मनुष्य सर्वथा चैतन्य–प्राणी है। वह नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का आराधक और धारक है। मनुष्य देवत्व तक पहुँचने की सम्भावना स्वयं में समाए हुए हैं।

मनुज के मनुजत्व को अवरोधित सबसे ज्यादा तो अन्तस् के विकार ही करते हैं। रावण जैसा गुणी शिव–भक्ति से च्युत होकर माया के परिवार के सदस्यों से घिर गया और सर्वनाश को प्राप्त हुआ। माया का फंदा बहुत विकट है–पानी के भँवर जैसा। मोह में कौन अंधा होने से बच सका है?काम–वासना किसे नहीं नचाती है?तृष्णा के वशीभूत हो कौन पागल सरीखा नहीं भटकता है?क्रोध से किसका हृदय नहीं जलता है?लोभ ज्ञानी, तपस्वी, वीर, कवि, गुणी सबको ग्रसता है। मद किसे नहीं होता?प्रभुता किसे बधिर नहीं बना देता है?मृगलोचनी के नेत्रों के बाण से कौन घायल नहीं हुआ है?यौवन के ज्वर से कौन पीड़ित नहीं होता?ममता के अतिशयता ने किसे अपयश नहीं दिया है?मत्सर ने किसी कलंकित नहीं किया है?शोक ने किसे विचलित नहीं किया?चिन्ता ने किसे नहीं डँसा?इस संसार में रहते हुए कौन है, जिसे माया नहीं व्यापती?मनोरथरूपी कीट से किसका शरीर खोखला नहीं हुआ?पुत्रैषणा, वितैषणा, और लोकैषणा ने किसकी मति मलिन नहीं की है?यह सब माया का सबल परिवार है, जो संसार और सांसारिक को अपने प्रबल प्रभाव से प्रभावित करता रहता है।

व्यापि रहेहु संसार महुँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड।।

उपर्युक्त सभी बातें और विकार पृथ्वी पर विचरनेवाले शरीरधारियों में होना स्वाभाविक है; क्योंकि जन्म के साथ ही सांसारिकता उपस्थित है। जीव शरीर धारण कर संसार में आता है। संसार का अपना गुण और स्वभाव है। उसके बीच में आकर उसके संस्पर्श से मनुष्य बच नहीं सकता।

ईस्वर अंस जीव अविनासी। वेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायाबस भयहुँ गोसाई। बन्ध्यो कीर मरकट की नाई।।

यह बंधन कितना मजबूत और कसा हुआ है; इस पर मनुष्य की गति–अवगति दर्शित है। संसार में रहते हुए और परिवार तथा राष्ट्र के दायित्वों का निर्वाह करते हुए लाभ–लोभ, शुभ–स्वास्थ्य का अंश तो जीवन में घर बसाएगा ही, परन्तु वह घर में आपके भौंह–भृकुटि संकेतों पर काम करे, आपका अनुवर बनकर रहे; घर–मालिक नहीं बन जाए। घर–मालिक बनकर वह रहेगा तो आपकी (जीवन की) दिन–रात दुर्गाति होती रहेगी। हमारे पास रावण–कंस–दुर्योधन से लेकर वर्तमान के अनेक देशों परिवारों, व्यक्तियों के उदाहरण हैं। अति किसी भी गुण–दोष की उचित नहीं होती। समभाव और समतोल ही कल्याणकारी और श्रेयस्कर है। समभाव और शान्तचित से कर्म करना ही सफलता का आधार बन सकता है। 'शतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः। (अथर्ववेद–7/52/8) मेरे दाहिने हाथ में कर्म (पुरुषार्थ) है और बाएँ हाथ में सफलता विराजमान है।

वैराग्य नहीं, कर्म की बात कर रहे हैं। हमारे स्व के जो कर्म हैं, वे इतने निष्पाप हों कि कर्म ही ईश्वर की पूजा बन जाएँ। निरभिमानी होकर संसार में रहना, धर्म सम्मत कर्म की सम्पन्नता और ईमानदारी और अपरिग्रह भाव से उद्योग–धन्धा–व्यापार– शिक्षा–नौकरी–मजदूरी करते हुए धन कमाना ईश्वर–पूजा ही है। ऐसी दशा में हमारा कर्म ही धर्म बन जाता है। निरहंकार जीवन में शान्ति लाता है। अहंकार ही मान की चिन्ता करता है।

अहंकार व्यक्ति का सबसे बड़ा नुकसान यह करता है कि वह जीवन से शान्ति को नष्ट कर देता है। रावण के पास स्वर्ण की लंका का वैभव और परिवार–सदस्यों की विपुलता होने के बाद भी वह अहंकार–भ्राता के संग रहने के कारण शान्ति के रिक्त से रिक्त था। निर्मम होकर अहंकार का दमन करने से ही शान्ति का पथ बुहारा जा सकता है। जथा–लाभ–सन्तोष को भक्ति का आठवाँ प्रकार माना गया है।

आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखिय परदोषा।।

इसलिए भोगवाद और बाजारवाद के त्याग से भी विश्व–शान्ति की एक राह खुलती है। भोगवाद और बाजारवाद का नाश होगा, तो साम्राज्यवाद अपने आप शक्तिहीन हो जाएगा। वर्तमान में यह भी एक प्रकार की साधना है, जो जीवन और विश्व दोनों की सद्संस्कृति के रक्षण हेतु आवश्यक है। आज विश्व–मंच पर जो कुछ नाटक की तरह प्रस्तुत हो रहा है, उससे सावधान रहने की चेतना का आग्रह है। सावधानी हटी कि दुर्घटना घटी। दृष्टि का सही होना ही सही मार्ग पर चलना अनिवार्य करेगा। सही मार्ग ही रामत्व (सद्गुणों) तक ले जाएगा। मनुष्यता ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है। राम स्वयं आलोक हैं, इसलिए इसे पाने हुए उसके मार्ग में अन्य आलोक की आवश्यकता नहीं है। स्वयं का प्रकाश ही राम के प्रकाश का कण–पूँजी है।'राम प्रकाश्य प्रकाशक जेते।'

राम मर्यादा के पालक हैं। धर्म–धुरीण हैं। 'श्रुति–सेतु पालक राम, तुम जगदीश माया जानकी।' राम नाम की वन्दना में गोस्वामी तुलसीदास ने व्यापकत्व रख दिया है। यह वाणी का विलास नहीं; अनुभव का प्रमाण है। वे कहते हैं–

बन्दौं नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।

मैं रघुवर राम के नाम की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का कारक है। अन्य मन्त्र देवताओं के प्रकाश से प्रकाशित है। गायत्री मन्त्र में सूर्य का प्रकाश है। शाबर मन्त्र में शिव की शक्ति का आलोक है। रामनाम में अग्नि, सूर्य, चन्द्र का प्रकाश–स्रोत है। 'राम नाम' स्वयं प्रकाशित है और यह अग्नि, सूर्य, चन्द्र को प्रकाशमान किए हुए है। 'राम' शब्द 'र', 'अ' और 'म' तीन अक्षरों से है। ये तीनों ही बीजाक्षर हैं। 'र' अग्नि बीज है। 'अ' सूर्य बीज है। 'म' चन्द्र बीज है।

रकारोश्नलबीजं स्याद्ये सर्वे बाड़्वादयः।
त्वा मनोमलं सर्वे भस्म कर्म शुभाशुभम्।।
आकारो भानु बीजं स्याद्वेदशास्त्र प्रकाशकम्।
नाशयेत्येव सद्दीप्त्या या विद्या हृदये तमः।।
मकारश्चन्द्रबीजचिं पीयूषपरिपूर्णकम्।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च।।

(महारामायण 52/62, 63, 64)

'र' अग्नि बीज है। अग्नि वस्तु के भीतर के सारे विकारों को जलाकर उसे शुद्ध बना देती है। उसके मल–दोष को जलाकर उसको विशुद्ध रूप में कर देती है। उसी प्रकार 'र' के उच्चारण से मन के विषय–वासनाओं का नाश हो जाता है। व्यक्ति को अपने शुद्ध स्वरूप या आत्मस्वरूप का बोध होने लगता है। 'अ' भानु बीज है। जैसे भानु के उदय से अंधकार मिट जाता है, वैसे ही 'अ' के उच्चारण से व्यक्ति के भीतर जो मोह–मत्सर आदि अविद्या के कारक हैं, उनका नाश हो जाता है। 'म' चन्द्र बीज है। चन्द्रमा का सम्बन्ध सम्बन्ध मन से है। उसमें अमृत है। अतः शीतलता है। वह शरदातप हरता है। शरद ऋतु के दिनों की गर्मी प्रखर होती है। कहते हैं क्वार के घाम में हरिण की पीठ काली पड़ जाती है। कन्या राशि का सूरज तपता है, फसलें पकती हैं। शरद के इस ताप को चन्द्रमा शीतल करता है। न केवल शरदाताप, वरन् छहों ऋतुओं की रात्रियों को शीतलता प्रदान करता है। उसी प्रकार 'राम' शब्द में 'म' अक्षर से त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) दूर होते हैं। हृदय शीतल होता है। तृप्ति उत्पन्न होती है, जीवन से कलुष नष्ट होते हैं, तो वैराग्य उत्पन्न होता है। अविद्या नष्ट होती है तो ज्ञान प्रकटता है। त्रिताप नष्ट होते हैं तो भक्ति उपजती है। 'राम' शब्द वैराग्य, ज्ञान और भक्ति का कारक है।

रकार हेतु वैराग्यं, परमं यचिं कथ्यते।
आकारो ज्ञानहेतुश्च, मकारो भक्तिहेतुकम्।।

हमने वाल्मीकि रामायण का आधार लेकर राम को रामो विग्रह धर्मः कहा है। हमारा धर्म से आशय कर्मकाण्ड युक्त कर्मणा से नहीं है। हमारा मन्तव्य सीधा–सीधा सत्य, शील और सौन्दर्य से युक्त विग्रह द्वारा किए गए सदाचरण और सत्कर्म से है। 'धर्म न दूसर सत्य समाना' और 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' से भिन्न हमारा मन्तव्य और पहुँच नहीं है। राम की सम्पूर्ण मर्यादा इसी धर्माश्रित है। वे इसी धर्म के लिए प्रकट हुए। 'धर्म हेतु अवतरेहुँ गोसाई।' या प्रभु अवतरेहुँ हरन महि भारा।' यह शरीर भी भूमि तत्त्व–संयुक्त है। राम का प्राकट्य होते ही हृदय प्रशान्ति की नीलिमा से भर जाता है। जीने का अर्थ हाथ लग जाता है। राम धर्म भी हैं, धर्मपालक भी हैं, धर्म संस्थापक भी हैं।

रावण का अर्थ है– रूलानेवाला। जो लोक रुलाए; दुःख दे, वह रावण है। 'रावयति सर्वान् लोकान् इति रावणः।' रावण ने अपने समय में समस्त लोकों, लोकपालों और लोकों के निवासियों को आतंकित और दुःखी कर रखा था। प्रकारान्तर से सोचने पर पाते हैं कि रावण के प्रतीकार्थ ही लोक को दुःखी करते हैं और लोक उनके वश में होकर रोता रहता है। हमारा अतिशय मोह, कामनाएँ, अपेक्षाएँ, द्वेष, पाखण्ड, क्रोध, मद, कपट, दर्प ही हमें रुलाता है। प्रत्येक पंथ इनसे विरत होकर जीने की बात करता है। हिंसा सर्वत्र वर्जनीय है। परन्तु कहीं प्रत्यक्ष हिंसा (जीव हिंसा) कहीं भाव हिंसा हो रही है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' और 'मनुष्यो मनुष्यस्य शत्रुम्' बना हुआ है। एक व्यक्ति दूसरे को परास्त और पछाड़ने पर तुला हुआ है। अर्थ–पिपासा इतनी प्रबल हो उठी है, जितनी रावण में मोह–पिपासा और दुर्योधन में युद्ध–पिपासा थी तथा अमेरिका में जितनी प्रभुत्व–पिपासा है। स्वर्ग–नरक कहाँ और किस रूप में है; इसका तो कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन अच्छे–बुरे कर्मों पर आधारित प्राकृतिक न्याय मिलने के प्रमाण इस संसार में अवश्य दिखाई देते हैं। कहते हैं ईश्वर की लाठी की मार पड़ती है, तो आवाज नहीं होती। यह भी कहा जाता है–'चोर की माय मुँह छिपा कर रोती है।'

अच्छाई और बुराई तथा सत्य और असत्य में युद्ध निरन्तर चलते आ रहा है। यह युद्ध बाह्य जगत और मनुष्य के जीवन में भी अविरत है। संसार में यह दिखाई देता है, जीवन में अदृश्य रहता है। परिणाम दोनों के प्रत्यक्ष होते हैं। रावण को लंका की रणभूमि में पछाड़ने के लिए राम धनुष–वाण का सहारा लेते हैं। यह शरीर भी स्वर्णमयी लंका है। एक तरह से युद्ध भूमि है। इस लंका में मोह रूपी रावण अपने परिवार के साथ रह रहा है। उसका परिवार विकारों–दोषों के सदस्योंवाला है, जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है, उसे परिवार सहित पराभूत करने के लिए राम युद्ध भूमि में उतरते हैं।

रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयहुँ अधीरा।

रावण रथ पर सवार है और राम बिना रथ के हैं। पैदल हैं। बिना पदत्राण के हैं। रावण पूरी तरह अस्त्र–शस्त्र से सज्जित है। वह रथी है। महाभारत में चार प्रकार के रथी का वर्णन आता है– अर्द्धरथी, रथी, महारथी और अतिरथी। जो अकेला पाँच सौ वीरों से लड़ सके, वह अर्द्धरथी; जो एक सहस्र से लड़ सके, वह रथी; जो दस सहस्र धनुर्धारियों से लड़ सके, वह महारथी और जो असंख्य धनुर्धारियों से अकेला लोहा ले सके, व अतिरथी होता है।

राम को विरथ देखकर विभीषण अधीर हो जाते हैं। राम ने विभीषण को जो उपदेश उस समय दिया, उससे विभीषण की शंका का निवारण होता है और यह श्रीमद्भगवद्गीता के समतुल्य है। जिस रथ से वास्तविक जीत होती है, वह और ही है। 'जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना।' वह आन्तरिक है। आध्यात्मिक है। नैतिक है। सदाचरित है। विजय आज भी सेना और युद्ध सामग्री पर नहीं; विजेता की बुद्धि, चरित्र, आत्मबल और साहस पर निर्भर होती है। विश्वामित्र के शस्त्र बल से वशिष्ठजी का आत्मबल प्रबल था। राम–रावण युद्ध में राम की धर्मबुद्धि, विवेक, नीति, मर्यादा और आत्मबल की ही रावण की पाप–बुद्धि, अविवेक और भीति पर जय हुई।

शूरता या पराक्रम और धैर्य जिसके रथ के चाक हों। सत्य, शुभ चरित्र की जिस पर ध्वजा फहरा रही हो। बल, विवेक, दम (बाह्य प्रकृति का दमन) और परहित जिसके रथ के चार घोड़े हों। (धर्म रथ के यही चार घोड़े हैं) क्षमा, कृपा, समता की बल्गाएँ हों। ईश्वर भजन ही चतुर सारथी हो। वैराग्य ढाल हो और सन्तोष की तलवार हो। दान का फरसा और बुद्धि का बल हो। श्रेष्ठ विज्ञान कठोर धनुष हो। निर्मल अचल मन तरकश के समान हो। शम, यम और नियम ही जिसके बाण हों। गुरु की पूजा (सेवा) जिसका अभेद्य कवच हो। हे सखा! ऐसा धर्ममय रथ जिसका हो, उसके लिए हर–प्रकार के शत्रु को जीतना सहज–संभव है।

सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।।

इस देह को भी रथ का रूपक दिया जाता है। जीवन भी रथ के समान गतिशील है। जीवन यदि धर्म रथ बन जाए, तो व्यक्ति अजातशत्रु हो सकता है। धर्मरथ के अंग हैं–शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परहित, क्षमा, कृपा, समता, ईश्वर–भजन, वैराग्य, सन्तोष, दान, बुद्धि, वर–विज्ञान, निर्मल अचल मन, शम, यम, नियम, विप्र सेवा और गुरु पूजा। राम स्वयं इस धर्मरथ के समस्त अंगों से सज्जित हैं–

गुन ज्ञान निधान अमान अजं, गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं।

राम ने यह उपदेश विभीषण को प्रबोधन के लिए दिया। विभीषण की अतिशय प्रीति राम के प्रति है। मंथन किया जाए तो यह भी निष्कर्ष निकले कि द्वापर युग में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए ज्ञान के अनुरूप त्रेता में श्रीराम जीवन जी चुके थे। श्रीमद्भगवद्गीता के सारे मूल्य श्रीराम के चरित्र में विद्यमान हैं। एक युग–पुरुष अपनी चारित्रिक श्रेष्ठता से धरती पर श्रेष्ठ जीवन के सारे प्रतिमान स्थापित कर देता है। राम ऐसे ही पुरुष–श्रेष्ठ हैं। वे इतिहास से परे मानव–मन की निरन्तर प्रवाहित होती गुणधारा की तरलता, शीतलता और शुचिता के संकेन्द्रण और सम्मोहन हैं। वे पावन हैं और पावनकर्ता हैं। वे उद्धार हैं और उद्धारकर्त्ता हैं। वे श्रीराम हैं और रामत्व से भक्त को निरन्तर भरनेवाले हैं।

राम सब कहीं है। वे अयोध्या में हैं। वे प्रत्येक जन–मन के श्रद्धासन पर विराजित हैं। वे केवट के प्रिय हैं। शबरी के आराध्य हैं। निषादराज, सुग्रीव और विभीषण के सखा हैं। वे सीतापति हैं। कौशल्या की गोद में मुद्रित बैठे हैं। अहल्या को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा लौटाते हैं। वे कैकेयी के दुलारे हैं। सरयू–सरिता का तट उनसे पुलक–पुलक हो उठाता है। वे शरीर से कहते हैं–

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता। मानहुँ एक भगति कर नाता।।

वे नातों को निबाहते हैं। ऐसा ही भक्ति–वत्सलता का नाता वे ओरछा की रानी कुँवरि गणेश से निबाहते हैं। ओरछा में वे रानी की भक्ति के वशीभूत होकर ही आए हैं। अयोध्या से ओरछा उनका आगमन संवत् 1631 में चैत्र सुदी नवमी (रामनवमी) को हुआ। ऐसा योग लगन, ग्रह, वार, तिथि का संयोग रामजन्म के बाद संवत् 1631 में चैत्र सुदी नवमी को आया था। इसी दिन–संवत् को गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। इसी दिन ओरछा की रानी कुँवरि गणेश की भक्ति ने श्रीराम को राम राजा के रूप में ओरछा का राज्य सौंपा। बेतवा की धारा इसकी साक्षी है। राम दिन में ओरछा में रहते हैं और रात्रि विश्राम अयोध्या में करते हैं।

बैठे जिनकी गोद में, मोद मान विश्वेश।
कौशल्या सानी भई, रानी कुँवरि गनेश।।
मधुकरशाह महाराज की, रानि कुँवरि गनेश।
अवधपुरी से ओरछा, लाई अवध नरेश।।
सर्व व्यापक राम के, दो निवास हैं खास।
दिवस ओरछा रहत हैं, शयन अयोध्या वास।।

सृष्टि और जीवन–दोनों के दो पक्ष हैं–उज्ज्वल और मलिन। सत्य और असत्य। सत्य से सृष्टि और जीवन परिचालित है। अन्तस् में रावण का निवास होने पर जीवन बिखर जाता है, जैसे रावण का पूरा परिवार छार–छार हो जाता है। सत्य का, शील का, सौन्दर्य का आग्रह और आधान जीवन को शुचिता, सौन्दर्य और शान्ति से आपूरित करता है। मनुष्य को उसके होने की सार्थकता प्रदान करता है। सद्गुणों के बिना मनुष्य जीवन बिना पानी के बादल जैसा है–

भगतिहीन नर सोहहिं कैसे। बिनु जल वारिद पेखिय जैसे।।

ग़ज़ल

ऐसी खबरों से बेखबर रहता
आते जाते न दिल में डर रहता
राह कटती बड़ी सुगमता से
साथ मेरे जो हमसफर रहता
चीख सुनता पुकार भी सुनता
किन्तु दिल में अगर मगर रहता
पंख रहते उड़ान में बाधा
इससे अच्छा तो मैं अपर रहता
जिंदगी में जो पूर्णिमा आती
चाँद भी साथ रातभर रहता।

कैलाश झा किंकर
क्रांतिभवन, कृष्णानगर खगड़िया
9430042712

समीक्षा

आलोच्य उपन्यास गंगा कछार

डॉ. गायत्री देवी
से.नि. प्रो. एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस.एम.कॉलेज, भागलपुर

प्रस्तुत कृति 'गंगा कछार' दियारा क्षेत्र के निवासियों का एक स्वच्छ दर्पण है, जिसमें पाठक को उस क्षेत्र के निवासियों की परिस्थितियों, समस्याओं, आर्थिक तंगहालियों, जीवन–यापन के लिए संघर्षों से जूझने का प्रतिबिम्ब साफ–साफ दिखाई पड़ता है। उपन्यासकार रामकिशोर दियारा क्षेत्र के निवासी हैं। उन्होंने उस क्षेत्र के यथार्थ को देखा, परखा और भोगा है। यही कारण है कि लेखक ने उपन्यास में उस क्षेत्र का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत किया है।

'गंगा कछार' यथार्थवादी उपन्यास है। इसका नायक टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर में पढ़नेवाला प्रमोद नाम का एक युवक है। वह दियारा क्षेत्र का रहनेवाला है। उसको अपने ही गाँव की दुलारी नाम की लड़की से प्रेम हो जाता है। दुलारी का विवाह अत्यन्त बचपन में ही 6–7 वर्ष की उम्र में किसी दूसरे गाँव के सम्पन्न खेतिहर के पुत्र के साथ हो जाता है। अबोध होने के कारण दुलारी को उस शादी का कोई ज्ञान नहीं होता है। उम्र बढ़ने पर वह प्रमोद के प्रेमपाश में आबद्ध हो जाती है। लेकिन 11 वर्ष के बाद दुलारी का ससुर उसकी विदाई कराने उसके घर आता है। बहुत कहने–सुनने के बाद दुलारी को ससुराल भेजने के लिए उसका बाप तैयार हो जाता है। दुलारी इन सारी बातों को सुन लेती है और इसकी सूचना पत्र के माध्यम से महादेव नाम के युवक के द्वारा प्रमोद के पास शहर भेजती है। पत्र में इस बात की जोरदार अपील की गई है कि आज शाम तक यदि तुम गाँव नहीं आओगे, तो मेरा मरा हुआ मुँह भी नहीं देखोगे। प्रमोद को वह पत्र रात के करीब आठ बजे मिलता है। उस समय तक गाँव जाने के लिए सभी नावें खुल चुकी होती हैं। प्रमोद के पास गाँव जाने के लिए अब गंगा तैरकर पार करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं रह जाता है। वह अपने मन को मजबूत करके उफनती गंगा नदी को विभिन्न कठिनाइयों को झेलता हुआ, मौत के आगोश से अपने को बचाता हुआ अपने गाँव पहुँचकर अपनी प्रेमिका दुलारी से भेंट करता है। उसकी दास्तान सुनता है और पंचों को बुलाकर उसके सामने ही दुलारी की माँग में सिन्दूर भर देता है। पहले तो पंच उसकी इस अनायास हरकत को देखकर आग बबूला हो जाता है। प्रमोद और दुलारी को मारपीट भी लगती है, लेकिन अंत सारी बातों को गहराई को समझते हुए प्रमोद और दुलारी के पक्ष में पंचायत अपना फैसला सुनाती है।

इस उपन्यास में लेखक ने दियारा क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं को बहुत ही साफ–साफ शब्दों में स्पष्ट किया है। जहाँ तक मेरा अपना विचार है, दियारावासियों की समस्याओं को आजतक किसी ने छुआ तक नहीं है। गंगा–कछार का परिवेश बिल्कुल अछूता है। बड़े–बड़े लेखक बड़ी समस्याओं को लेते हैं, उसको अपनी लेखनी से रंगते हैं। लेकिन रामकिशोर से इस अछूते परिवेश की विभिन्न परिस्थितियों और समस्याओं को इतने ज्वलंत रूप में पाठकों के समक्ष रखा है कि उसको पढ़कर पाठकों को घर बैठे वहाँ की दर्द–भरी दास्तान को सुनने, समझने और सोचने का अच्छा सुअवसर मिल जाता है।

उपन्यास में न्यायप्रियता के जिस आदर्श को स्थापित किया गया है, उसे पढ़कर मुझे प्रेमचंद के 'पंच–परमेश्वर' कहानी की याद आती है, जहाँ पंच दूध का दूध और पानी का पानी फैसला करते हैं। गोपाल दास गाँव के जमींदार हैं, उनका बेटा उमेश दास अपने ही गाँव के अछूत डोम भदेसर की बेटी सोनिया का बलात्कार करता है। भदेसर डोम इस घृणित घटना के न्यायिक फैसले के लिए पंचायत के पास दरखास्त करता है। सोलगइयाँ पंचायत के मुखिया कनक मड़र को चौरासी पंचायत के मुखिया उन्हें फैसले के लिए आमंत्रित करते हैं। पंचायत बैठती है, दोनों पक्षों की दलील को सुनने के बाद पंचायत अपना फैसला सुनाती है कि गोपालदास का बेटा उमेश दास अछूत डोम भदेसर की कन्या के साथ विवाह करके उसे अपने घर बहू बनाकर ले जाएँ। कुछ लोगों को इस फैसले पर नाराजगी होती है, लेकिन अंत में पंचायत के फैसले के मुताबिक भरी पंचायत में ही भदेसर की बेटी सोनिया से उमेश दास का विवाह करा दिया जाता है। पंचायत की जय–जयकार ध्वनि से सराहना की जाती है।

इस तरह उपन्यास में लेखक ने बहुत बड़े आदर्श की स्थापना की है, जो समाज के प्रत्येक लोगों के लिए अनुकरणीय है। लेखक की इस कृति को फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों की तरह आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। जिस तरह रेणु ने पूर्णियाँ क्षेत्र के अंचल विशेष की समस्याओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। अंचल विशेष के शब्दों एवं भाषा को अपने उपन्यास में प्रयोग किया है। उसी तरह रामकिशोर ने दियारा क्षेत्र की समस्याओं को अपनी कृति में उजागर किया है। उक्त कृति में क्षेत्रीय शब्दों का खुलकर बहुत ही सटीक और आकर्षक ढंग से प्रयोग किया गया है।

उपन्यास में बाल–विवाह का भी प्रतिरोध किया गया है। दुलारी का विवाह बचपन में ही उसका बाप करा देता है। अवयस्क होने के कारण इस विवाह की कोई मान्यता नहीं रहती है। विवाह दो दिलों का संगम है। यह दो दिलों को जोड़ता है। दुलारी का विवाह बचपन में होने के कारण उसकी कोई मान्यता नहीं दी जाती है और वयस्क होने पर दुलारी का विवाह उसके प्रेमी प्रमोद के साथ करा दिया जाता है और समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित किया जाता है।

गंगा कछार एक मार्मिक कथाकृति है, जिसमें गंगा के दियारा क्षेत्र में जीवन बसर करनेवाले निम्नवर्गीय लोगों के दर्द की कहानी है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन के चितेरे और संघर्षों की आग में तपकर निखरे कथाकार रामकिशोर ने दियारा क्षेत्र की सच्चाई का काफी मार्मिकता के साथ जीवन्त चित्र उकेरा है।

उपन्यास का कथ्य और उसकी भाषा अत्यन्त ही उच्च कोटि की है। आंचलिक शब्दों का प्रयोग उपन्यास की आंचलिकता की गवाही देता है। यद्यपि इस कृति की भाषा, शैली और शिल्प पर अलग से चर्चा हो सकती है। यथापि यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि उपन्यास की भाषा और शैली सरल, सुग्राह्य और काव्यात्मक है। उपन्यासकार ने रेणुजी की तरह अंचल विशेष एवं देशज शब्दों का प्रयोग प्रभावकारी तरीके से किया है। उपन्यास में सहज, संयत बिम्बों, प्रतीकों, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया गया है। जो सोने पर सुहागा का काम करता है।

उपन्यास का कथोपकथन व्यवहार प्रधान संक्षिप्त और नुकीले हैं। भाषा में कहीं भी अश्लील और अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं है। दियारा

क्षेत्र के सामाजिक और पारिवारिक जीवन के चित्रों की अभिव्यक्ति भी लेखक ने अपने सुंदर शैली में की है। यद्यपि उपन्यास यथार्थवादी है, किन्तु शैली भावनात्मक और शालीनता प्रधान है।

रामकिशोर की यह प्रथम औपन्यासिक कृति है। बाढ़ के समय उफनाती गंगा नदी का लोमहर्षक दृश्य पाठक के रोंगटे खड़ा कर देता है। जिसने गंगा नदी के इस भयावह दृश्य को नहीं देखा है, वह दृश्य इस उपन्यास के पन्ने–पन्ने पर अंकित है।

लेखक का मुख्य प्रतिपाद्य बाढ़ के समय गंगानदी को पार करने में कितनी भयावह जानलेवा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसको चित्रित करना हैं यही कारण है कि इनकी आधी रचना इसी यथार्थ को चित्रित करने में खर्च हो गई है।

कुल मिलाकर लेखक की यह कृति अत्यन्त सफल औपन्यासिक कृति है। लेखक बधाई के पात्र हैं। उनके अन्य उपन्यास समय–समय पर पाठकों के सामने आते हरे, ऐसी उम्मीद है।

कविता

कौन था वह

पारस कुंज
भागलपुर
6201334347

एक राष्ट्रकवि का मारा जाना
क्या है हकीकत क्या है फसाना
कहते हैं कि उनीस सौ तिरसठ में
एक कवि को सिर्फ इसलिए
जहर देकर मार दिया गया था कि
वह जब कहता सच ही कहता
सच के सिवा कुछ नहीं कहता
वह जब कहता, देश की अस्मिता
उसकी सुरक्षा और राष्ट्र के
नव निर्माण की बात कहता
एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा
की बात कहता
जो कभी सत्ता के गलियारों में भटका
न किसी का प्रशस्ति गान किया
और न ही किसी की चाटुकारिता की
बल्कि वह जब तक जिया
एक आजाद पंछी की तरह
पूर्ण अस्मिता सहित
स्वाभिमान और आन बान शान के
साथ, राष्ट्र की पहचान बनकर जिया
वह जब मंचों पर खड़ा होता
तो उसके सामने अच्छे–अच्छे
चाँद सितारे ध्वस्त हो जाते
कइयों को उसने, गीत लिखना सिखाया
बहुतों ने उसकी भाव भंगिमा अपनायी
कइयों ने तो उसके गीतों को भी चुराया
और अपना बता मंचों पर सुनाया
कहते हैं कि मारे जाने से पूर्व
अपनी ओजपूर्ण वाणी और
राष्ट्रभक्ति रचनाओं के गायन से
वह इतना लोकप्रिय हो चुका था कि
सिर्फ उसके नाम की भनक से ही
चंद घंटों में ही सुननेवालों का
जन सैलाब उमड़ पड़ता था
रात–रात भर कौन कहे, भोरम–भोर
तक श्रोता उठने का नाम न लेती
सबकी जुबान पर रहता तो
बस एक उसी का नाम रहता
कहनेवाले यहाँ तक कहते कि
उसके सामने राष्ट्र नायकों तक की
छवि भी धूमिल पड़ने लगी थी
तभी उसकी हत्या की खबर
जंगल में लगी आग की तरह
पूरे देश में सर्वत्र फैल गई
जिला प्रशासन की कौन कहे
उसने तो राज्य सरकार तक
को हिला कर रख दिया था
ऐसे हालात में
राजा करे तो क्या करे
सोच पाना बड़ा ही कठिन था
आनन फानन में उनके
लिखित या मौखिक आदेश पर
सर्वप्रथम मृत–शरीर को
हिरासत में लिया गया
परिजनों को बुलाने के नाम पर
दिमागी कसरत चलायी गई
पर न तो वे आये और न
उन्हें लाया ही गया
जबकि राजा चाहता तो
उन्हें लाया जा सकता था
सब कुछ जान पोस्टपार्टम तो बनता ही था
पर तथाकथितों के कहने पर कि
'राष्ट्र....कवि का पोस्टमार्टम
न होने दिया और न कराया ही गया
जीवितावस्था से मरणोपरांत
या यों कहें कि आजतक उसे
न तो कोई राष्ट्रीय सम्मान मिला
और न ही कोई पुरस्कार
पर, वाह री जनता! उस कवि को
अपनी सर–आँखों पर बिठाया
और उसे 'राष्ट्रकवि बनाया
ऊहापोह की स्थिति के बाहर निकल
तब राजा को ख्याल आया
कहते हैं कि करीब बीस घंटे तक
मृत शरीर को हिरासत में रखने के बाद
राष्ट्रध्वज में लिपटाकर उसकी
शवयात्रा निकलवाई गई
जिसमें सैकड़ों छोटे–बड़े साहित्यकारों
सहित हजारों की जनसैलाब उमड़ आया
तब कहीं जाकर बंदूक की सलामी
और पूर्ण राजकीय सम्मान के साथ
उसकी अन्त्येष्टि करवायी गयी
कहते हैं कि उसकी पुकार पर तब
हिमालय भी पिघल गया था और
हम हैं कि आज तक नहीं पिघले
क्या पता है आपको कौन था वह
मुझे तो ज्ञात नहीं आजतक
उसके बारे में सिर्फ
सुनता ही आया हूँ पर
तलाश जारी है
यदि पता हो आपको
तो राष्ट्र को बतायें और
राष्ट्र नायको को भी
इतने वर्षों बाद, शायद अब भी
उनकी आँखों से पश्चाताप के
आँसू छलक जाएँ

जिसका वह हकदार था
उसके लिए कुछ कर जाएँ
क्योंकि
मिट्टी के हर पुतले को है मिट्टी में मिल जाना
जो करना है कर ले होगा लौट के फिर न आना

कहानी

सोनचिरैया

डॉ नीरजा हेमेन्द्र
न्यू हैदराबाद, लखनऊ
मो0–9450362276

पर्वतों से निकलकर गिरती–बलखाती नदी, जिस प्रकार मैदान में आकर सामान्य गति से चलने लगती है, ठीक उसी
प्रकार जीवन के आपाधापी से गुजरते हुए अब मेरे जीवन में सब कुछ सामान्य चल रहा है। एक प्रकार से कहूँ तो अच्छा ही है। मैं यह सोच कर संतुष्ट हूँ कि मेरे जीवन में सोचा हुआ सब कुछ सामान्य ढंग से घटित होता जा रहा है। कभी–कभी मेरे जीवन में युवावस्था की स्मृतियाँ मन–मस्तिष्क में सहसा दे देती है। तब कॉलेज के दिनों में मैं एक अदद सरकारी नौकरी करने के सपने देखा करता था। नौकरी प्राप्त करना ही उस समय मेरी शिक्षा को, मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। मेरे साथ मेरे घर कें उस समय सबकी प्रसन्नता की सीमा न रही, जब मेरे प्रयास का प्रतिफल मुझे सरकारी क्षेत्र के लोक निर्माण विभाग में नौकरी के रूप में मिला। मेरे जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य मानो वहीं पूर्ण हो गया हो। किन्तु जीवन में काम और भी थे...उद्देश्य और उत्तरदायित्व और भी थे। अभी मेरे जीवन के आधार और मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण मेरे माता–पिता की वृद्धावस्था, उनके शरीर का क्षरण और उनका विछोह देखना लिखा था। वो देखा...ऐसे कमजोर समय में मेरी पत्नी, मेरे दोनों बच्चे मेरा संबल बने रहे। शनैः शनैः बच्चे बड़े होते गये। बच्चों में अपने जीवन के अनेक अपूर्ण सपना को समाहित करते हुए मैं और मेरी पत्नी खुश थे। मेरी बेटी बड़ी थी और बेटा उससे चार वर्ष छोटा। दोनों की शिक्षा शहर के अच्छे कॉलेज में हो रही थी। बच्चे अनुशासित, आज्ञाकारी थे। शिक्षा के प्रति सतर्क और भविष्य के प्रति जागरुक। कभी–कभी मैं सोचता कि क्या जीवन में सब कुछ इतनी सरलता से प्राप्त होता है, जैसा कि मुझे प्राप्त होता जा रहा है।

मेरी बेटी की शिक्षा पूरी होते ही मुझे व मेरी पत्नी को उसके विवाह की फिक्र होने लगी। हम उसके लिए योग्य वर की तलाश में लगे थे। इन सबसे अलग मेरी बेटी अपनी नौकरी के लिए प्रयत्न कर रही थीं एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में उसकी नौकरी लग गयी। अपनी नौकरी के लिए उसे दूसरे शहर में जाना था। वह चली गयी। हम सबसे दूर वह अवश्य चली गयी, किन्तु हम सब प्रसन्न थे कि अपने जीवन का मार्ग उसने तलाश लिया है। वह आत्मनिर्भर हो गयी है। एक माता–पिता को इससे अधिक प्रसन्नता और किस बात की होगी कि उसके बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के बाद रोजगार से लग गये हैं। मैं और मेरी पत्नी फुर्सत के क्षणों में संतुष्टि के साथ बातें करते कि समय कितनी तीव्र गति से आगे बढ़ गया और हमें इस बात का एहसास भी न हुआ कि हमारी बेटी कृति आज आत्मनिर्भर होकर सफलता के पथ पर आगे बढ़ रही है। हमारा बेटा अंशुल भी बहन जैसा समझदार है। सुशील व आज्ञाकारी। अंशुल बेहद शालीन व माँ का दुलारा है वो अपनी माँ का बड़ा ध्यान रखता हैं माँ की किसी भी तकलीफ में वो व्याकुल हो उठता है। लंबा, आकर्षक मेरा बेटा, जिसे मैं भरपूर दृष्टि से देखते हुए भी डरता था कि कहीं उसे मेरी नजर न लग जाए। उसकी प्रशंसा मैं इसलिए नहीं कर रहा कि वो मेरा बेटा है। बल्कि इसलिए कर रहा हूँ कि आजकल के युवकों, अपने आस–पास नाते रिश्तेदारों के लड़कों को अनावश्यक चीजों जैसे महँगे मोबाईल, मोटर साइकिल, ब्राण्डेड कपड़ों के लिए हठ करते देख रहा हूँ और उनके माता–पिता को पैसे न होने पर भी जैसे–जैसे उनकी माँग पूरी करते। किन्तु अंशुल ने हमसे कभी कोई चीज माँगी नहीं। बल्कि हमने उसकी आवश्यकता को समझते हुए मोबाईल फोन दिला दिया था। कॉलेज आने–जाने में उसे कोई परेशानी न हो, इसलिए उसे बहुत महँगी तो नहीं, अपितु ठीक–ठीक बाईक दिला दी थी। बाईक पाकर वह अत्यन्त खुश व संतुष्ट था।

आज की युवा पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की खरीददारी अब अधिकांशतः ऑन लाइन करने लगी थी। अंशुल की माँ उससे कहती कि वह भी ऑन लाइन अपने लिए कपड़े इत्यादि मँगा लिया करे।
किन्तु मेरा बेटा अंशुल अपनी आवश्यकताओं की चीजें मेरे साथ बाजार जाकर खरीदता। मेरे पूछने पर कहता कि पापा आप दिलायेंगे तो चीज भी अच्छी होगी और आप अपने अनुसार बजट भी मैनेज कर लेंगे। उसकी बात सुनकर मैं मुस्कुरा पड़ता।

''नहीं बेटा तुम ऑन लाइन अपनी पसंद की चीजें मँगा लिया करो। मेरे पास इतना बजट है कि अपने बेटे की आवश्यकताएँ पूरी कर सकूँ।''–मैं उससे कहता।

''मेरे पास सब कुछ है पापा। अनावश्यक कपड़े, जूते खरीदने से कोई लाभ नहीं।'' वह मुस्कुराकर कह पड़ता।

कभी–कभी मैं सोच में पड़ जाता कि इस नये जमाने में जहाँ आधुनिकता के नाम पर युवा अच्छे विचारों को नहीं मात्र अच्छे वस्त्रों व नये–नये फैशन को प्रमुखता दे रहे हैं। वहीं मेरा बेटा इन व्यसनों से दूर रहकर अपनी शिक्षा पर ध्यान लगाता है। पारिवारिक मूल्यों को तरजीह देते हुए अपनी माँ व बहन की भावनाओं की कद्र करता है। सचमुच हमने पूर्वजन्म में अवश्य ही अच्छे कर्म किये होंगे, तभी हमें ईश्वर ने अंशुल जैसा बेटा दिया है। अंशुल खूब मन लगाकर पढ़ता है और अपनी नौकरी व कैरियर के बारे में मुझसे चर्चा करता है। कभी–कभी वह कहता है कि पापा यदि मेरी नौकरी किसी दूसरे शहर में लगी तो आप व मम्मी मेरे साथ रहिएगा। अंशुल की बात सुनकर उसकी माँ निहाल हो उठती। माँ के चेहरे की प्रसन्नता व संतुष्टि के भाव देखते ही बनता था।

मेरी सेवानिवृत्ति में अभी सात वर्ष शेष थे। मैं प्रसन्न था कि मेरी नौकरी के सात वर्ष अभी शेष भी हैं और मेरे प्रमुख उत्तरदायित्व पूरे होते जा रहे हैं। मैंने अपनी बेटी का ब्याह कर दिया है तथा वो ससुराल में सुखी जीवन व्यतीत कर रही है। आत्मनिर्भर भी है। अंशुल इस वर्ष बी.टेक. के दूसरे वर्ष में है। वह यहाँ के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में पढ़ रहा है। उसके कॉलेज में दूसरे शहर के बच्चे भी अध्ययन कर रहे हैं। उनमें से अधिकांशतः कॉलेज के हॉस्टल में रहते हैं। मैंने देखा है, इनमें से कुछ लड़के दुर्व्यसनों के शिकार हैं। माता–पिता के परिश्रम के पैसों से वो शराब, गुटखा, सिगरेट आदि का सेवन करते हैं तथा जीवन का बहुमूल्य समय घूमने–फिरने में व्यतीत करते हैं। अब हमारा वाला समय तो रहा नहीं कि अपने ही शहर में जो शिक्षा उपलब्ध है, उसी में से चुनकर जो मन हो पढ़ लिया गया। अब तो लड़कियाँ भी बहुतायत की संख्या में दूसरों शहरों से आकर यहाँ पढ़ रही हैं। उनमें से भी अधिकतर कॉलेज के गर्ल्स हॉस्टल में रहती है। वेश–भूषा, साज–सज्जा में आधुनिक दिखतीं ये लड़कियाँ फर्राटे से स्कूटी चलाती आगे–आगे बढ़ जाती हैं, तो उन्हें देखकर गर्व होता है कि लड़कियाँ विकास के सोपानों पर आगे बढ़ रही हैं। उनमें से कई लड़कियाँ कॉलेज के मित्र लड़कों को बाईक के पीछे की सीट पर अत्यन्त आत्मविश्वास के साथ बैठकर आती–जाती हैं। नये दौर के युवा बच्चों को इस प्रकार मित्रवत् देखकर मुझे अच्छा लगता है। कभी–कभी मैं सोचता कि पुराने ढर्रे पर सलवार–कमीज, साड़ी–ब्लाउज से अपना अत्यन्त मॉडर्न जीन्स, स्कर्ट आदि पहनने वाली ये लड़कियाँ क्या विचारों से भी आधुनिक होंगी...या मात्र वस्त्रों से ही ये आधुनिक हैं?जो भी हो, मैं जब भी बेटे के कॉलेज जाता, आत्मविश्वास से भरी ये आधुनिक लड़कियाँ मुझे प्रभावित करतीं। इनमें मुझे अपनी बेटी की छवि दिखाई देती। वो भी तो इनमें से किसी एक के जैसी ही है।

अंशुल अब शाम के शेष समय में कभी–कभी अपने मित्रों के साथ घूमने निकल जाता। युवा होते बच्चों को घर में बाँधकर भी तो नहीं रखा जा

सकता। जब मैं शाम को कार्यालय से घर आता, हाथ–मुँह धोकर फ्रेश होता, तबतक मेरा बेटा मुझसे थोड़ी देर के लिए बाहर जाने की परमिशन लेने के लिए मेरे पास आ जाता। उसके मासूम मुस्कुराते चेहरे पर फैला भोलापन देखकर मेरा मन आशंकित होने लगता कि मेरे बेटे के इस भोलेपन का कोई लाभ न उठा ले। अपने मन की आशंका को पत्नी को न बताकर अपने तक सीमित रखता। बेटे को बाहर जाने की आज्ञा देती पत्नी के चेहरे पर भी उसी प्रकार की मुस्कान देखकर मैं अपनी इस आशंका को स्वयं तक सीमित रखना उचित समझता।

समय व्यतीत होता जा रहा था। अंशुल बी.टेक. के दूसरे वर्ष में भी उत्तीर्ण हो गया था। मात्र उत्तीर्ण ही नहीं, बल्कि अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हुआ था। सफलता की खुशी उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखने लगी थी। अब उसका तीसरा वर्ष था। इस वर्ष का कोर्स अपने की अपेक्षा कुछ कठिन हो गया था। अंशुल अब अधिक समय अपनी पढ़ाई पर व्यतीत करने लगा था। दिनभर कॉलेज में तथा शाम को वह थोड़ी देर के लिए अपने मित्रों के साथ बाहर जाता। पुनः रात को देर तक पढ़ता। अत्यन्त व्यस्तता भरा समय था उसका। मैं और उसकी माँ प्रसन्न थे तथा अपनी ओर से उसे पूरा सहयोग कर रहे थे। बेटा अंशुल अपने कमरे में पढ़ता और हम अपने कमरे में बैठकर भविष्य की योजनाएँ बनाते। अंशुल की माँ कहती कि आजकल नौकरी मुश्किल से मिलती है। वो भी जिस शहर में लड़के रहते हैं, उस शहर में नहीं मिलती। नौकरी के इच्छुक लड़के–लड़कियाँ दूसरे शहरों में जाकर नौकरी करने को विवश हैं।'' अंशुल की माँ सही कहती है–''हम इतने बड़े शहर में रह रहे हैं, फिर भी यहाँ के लड़कों का दूसरे शहर में जाकर नौकरी करनी पड़ती है। चाहे वो सरकारी क्षेत्र में हो या प्राइवेट क्षेत्र में। ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ कि उसे सरकारी क्षेत्र में एक अच्छी नौकरी मिल जाए, भले ही वो अपने शहर में हो या किसी अन्य शहर में। हम अंशुल के साथ ही रहेंगे।'' पत्नी की बात सुनकर मैं मुस्कुरा उठता। उसकी बातों में अपने मन का प्रतिबिम्ब देखता।

सुबह के 9 बज रहे हैं। मैं तैयार होकर कार्यालय जाने के लिए बस से निकलनेवाला ही था। अंशुल अभी तक अपने कमरे में सो रहा था। वो प्रतिदिन मुझसे पहले आठ बजे तैयार होकर कॉलेज के लिए निकल जाता है। आज अभी तक नहीं उठा। पूछने पर पत्नी ने बताया कि कल भी कॉलेज नहीं गया था। दिनभर कमरे में ही रहा। खाने के लिए आवाज देने पर थोड़ी देर के लिए बाहर निकला तथा बमुश्किल थोड़ा–सा खाना खाया। पत्नी की बात सुनकर मैं उसके कमरे में गया। अंशुल जग रहा था, किन्तु अभी तक बिस्तर पर लेटा था। कदाचित् वो अस्वस्थ हो यह सोचकर मैंने उसका हाल जानना चाहा, किन्तु वो बोला कुछ भी नहीं।

''ठीक हूँ पाप।'' कहकर उसने अपनी आँखों बंद कर करवट बदल ली।

''उठो बेटा। नौ बज चुके हैं। नाश्ता कर लो। मैं ऑफिस जा रहा हूँ।'' कहकर मैं कार्यालय के लिए निकल गया।

रास्ते भर मन में तरह–तरह के विचार उठ रहे थे। कहीं अंशुल अस्वस्थ तो नहीं। आज मुझे अवकाश लेकर उसे डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए था। मन अपराधबोध से ग्रसित हो रहा था। मैं कार्यालय के समीप पहुँच चुका था। शाम को घर पहुँचते ही उसे डॉक्टर के पास लेकर जाऊँगा। दिनभर कार्यालय में किसी प्रकार काम करता रहा। काम में मन नहीं लग रहा था। घर में पत्नी को फोन पर अंशुल का हाल पूछता रहा। पत्नी ने बताया कि बहुत कहते–कहते किसी प्रकार उठा है। बाथरूम से आया है। नाश्ते के लिए कहनेपर एक रोटी निगलकर वापस अपने कमरे में जाकर लेट गया है। पत्नी परेशान थी। वह शाम को घर आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

ऑफिस से छूटते ही मैं शीघ्रता से घर की ओर चल पड़ा। सोच रहा था कि घर पहुँचकर अंशुल को लेकर तुरंत डॉक्टर के पास जाऊँगा। मैं घर पहुँचा तो अंशुल ने डॉक्टर के पास जाने से इंकार कर दिया। मैं कहता रहा–''कुछ नहीं पापा। मैं ठीक हूँ।'' कहकर वो कमरे से बाहर ही नहीं निकला। उसके हठ के समक्ष हम खामोश हो गये। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, तब उनकी बात मानना और खामोश रहना भी सही विकल्प रहता है। मैं और मेरी पत्नी चुपचाप ड्राइंग रूम में बैठे थे। भोजन का समय हो रहा था, किन्तु खाने की इच्छा नहीं हो रही थी। मैं मधुमेह का रोगी था। मेरी दवा का समय हो रहा था। पत्नी बार–बार आग्रह कर रही थी कि कुछ खाकर मैं अपनी दवा ले लूँ। पत्नी की बात मानकर मैं उठने ही वाला था कि सहसा दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजे के शीशे से मैंने देखा कि दो पुलिसकर्मी मेरे दरवाजे पर खड़े दिखे। दरवाजा खोलने के बजाय मैं वापस ड्राइंगरूम में आया और पत्नी को बताया कि दो पुलिसवाले दरवाजे पर खड़े हैं। जीवन में पहली बार दरवाजे पर पुलिस को देखकर मैं नर्वस था। घबराया हुआ था, बल्कि सच कहूँ तो सकपका गया था। पुरुष चाहे जितना भी स्वयं को मर्द समझ ले, साहसी बने। मैं समझता हूँ, ऐसे गाढ़े समय में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक साहस का परिचय देती हैं।

''जाओ, दरवाजा खोलो, किसी का पता पूछ रहे होंगे।'' पत्नी ने कहा।

''अंशुल का घर यही है?'' मेरे दरवाजा खोलते ही उनमें से एक ने पूछा।

''जी हाँ! बताइए मैं उसका पिता हूँ।''

''वो इस समय घर में हैं? उससे पूछताछ करनी है।'' उसने थोड़े कड़क शब्दों में कहा।

''जी हाँ, पर उसकी तबीयत ठीक नहीं है।'' मैं अनजाने भय से आशंकित था कि कैसे अपने बेटे को बुलाकर इनके सामने कर दूँ?

''क्या बात है?'' फिर भी डरते–डरते मैंने पूछा।

''आपको नहीं पता आपके लड़के ने एक लड़की का अपहरण किया है?''

''क्या...?'' तबतक मेरी पत्नी भी वहाँ आ चुकी थीं और पुलिसकर्मी की बात सुनकर उनकी चीख निकल गयी। भीतर तक काँप तो मैं भी गया।

''ये आपसे किसने कहा?'' किसी ने आपको गलत सूचना दी गयी है।'' साहस कर मैंने कहा।

''सही है या गलत, अभी आपको पता चल जाएगा। आप अपने बेटे को बुलाते क्यों नहीं?'' पुलिसवाले की बात सुनकर मैं और मेरी पत्नी एक–दूसरे का मुँह देखने लगे।

''दो दिनों से लड़की या तो आपके घर में है या आपके लड़के ने कहीं और छुपा रखा है।''

''नहीं सर! मेरा बेटा ऐसा नहीं है। कई दिनों से उसकी तबीयत ठीक नहीं है। वह घर में पड़ा है।'' मेरी पत्नी गिड़गिड़ा पड़ी।

पुलिसकर्मी कुछ देर तक सोचते रहे। मेरा मोबाईल नंबर लिया और अगले दिन बेटे को लेकर थाने आने का आदेश देकर चले गये। मैं और मेरी पत्नी बदहवास से एक दूसरे को देख रहे थे। उनके जाते ही मेरी पत्नी बेटे के कमरे में भागती हुई गयीं। अंशुल अपने कमरे में पढ़नेवाली कुर्सी पर बैठा चुपचाप छत की ओर देख रहा था।

''माँ! मैंने कुछ नहीं किया।'' अंशुल अपने माँ को देखते ही बोल पड़ा।

''हाँ बेटा! मालूम है।'' मेरी पत्नी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा।

मैं बेटे के सामने जाने का साहस नहीं कर पा रहा था। अपने बेडरूम में आकर कुर्सी पर निढाल होकर बैठ गया। बेटे के कमरे से पत्नी व अंशुल की बातचीत की आवाजें स्पष्ट आ रही थीं। मैं समझ नहीं पा रहा था कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। मेरा हलक सूख रहा था।

माँ अवन्तिका राघव की दोस्त है। मेरे सभी मित्रों को ये बात मालूम हैं। वो पैसेवाले घर की लड़की है। बहुत खर्चीले स्वभाव की है। राघव उसे बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सीधा करता है। अपने महँगे शौक को अवन्तिका के पैसों से पूरा करता है। मेरे सभी मित्रों को ये बात पता है। वो अवन्तिका को लेकर कहीं गया है। अंशुल रुक–रुककर अपनी माँ को सभी

बातें बता रहा था।

''आज पाँचवाँ दिन है। वो कहीं चले गये हैं। परसों अवन्तिका के फोन से मेरे पास फोन आया। फोन राघव ने किया था कि मैं अवन्तिका के घर उसके किडनैपिंग की सूचना देकर पैसों की माँग करूँ। मेरे मना करने पर उसने मुझे इसमें फँसा देने की धमकी दी थी। माँ! इसमें राघव के साथ अवन्तिका भी मिली हुई है। अवन्तिका ने इसमें मुझे फँसाने की धमकी दी है।'' अंशुल की बातें सुनकर मेरे समक्ष वस्तुस्थिति आईने की भाँति स्पष्ट हो गयी थी।

''अवन्तिका अपने घर से पैसे मँगाकर राघव के साथ घूमना–फिरना चाहती है। उनकी बात न मानने पर उनलोगों ने जान–बूझकर इसमें मुझे फँसाया है। अंशुल रुआँसा हो रहा था।

''बेटा! तुम फिक्र बिल्कुल न करो। हम सब सँभाल लेंगे। ये बात पहले हमें बतानी थी। तुम्हारी कोई गलती न होते हुए भी तुम तीन दिनों से नाहक ही परेशान थे। उठो बेटा! हाथ–मुँह धोकर खाना खाओ। मैं तुम्हारे पापा को भी खाना दे दूँ, उन्हें दवा खानी है।''–पत्नी ने कहा। मैं अपनी पत्नी की प्रशंसा करूँगा कि ऐसे आड़े वक्त पर जब मेरा साहस जवाब दे जाता है, तब मेरी पत्नी बखूबी स्थिति सँभाल लेती है।

''उठो, चलो खाना लो। सुबह होते ही पहले हमें अवन्तिका के घर चलना है।'' पत्नी अपने कमरे में आ गयी थी। उनके चेहरे पर तनाव के चिह्न स्पष्ट थे।

बाथरूम से पानी चलने की आवाजें आ रही थीं। अंशुल बाथरूम में चला गया था। पत्नी ने खाना गरम कर सबकी थाली मेज पर लगा दी थी। रात के ग्यारह बज रहे थे। अंशुल भी खाने की मेज पर आ गया था। पहले की अपेक्षा अब वह कुछ आश्वस्त लग रहा था। दूसरे दिन सुबह आठ बजे हम अवन्तिका के घर के गेट पर थे। घर क्या था अमीरी का पूरा साम्राज्य था। दरबान ने गेट खोलकर बरामदे में पड़ी कुर्सी पर हमें बैठा दिया। कुछ देर में अवन्तिका के माता–पिता बाहर आए। हमने अवन्तिका के माता–पिता को सच्चाई बतानी चाही, किन्तु वो सुनने को तैयार नहीं थे।

''आप मुझे ठीक से जानते नहीं हैं। ऐसे आवारा लड़कों को मैं सबक सिखाना जानता हूँ।'' उन्होंने सभ्यता की सभी सीमाएँ लाँघते हुए कहा। उन्हें देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता था कि अपनी बेटी को भी उन्होंने यही संस्कार दिए होंगे।

''क्या आपको अवन्तिका ने बताया कि मेरे बेटे ने उसका अपहरण किया है?और बदले में वो पैसे माँग रहा है।'' मैं उनके समक्ष अपना पक्ष रखने का प्रयत्न कर रहा था।

''नहीं, अवन्तिका ने नहीं, उसके दोस्त ने कहा और उसने बताया कि मेरी बेटी को तुम्हारे लड़के ने किडनैप किया है।''

''तो क्या वो दोस्त सही बोल रहा है?''–मेरी पत्नी ने कहा।

हमारी बातें सुनकर अवन्तिका के पिता को कुछ–कुछ समझ में आने लगा था। उन्होंने पुलिस से अवन्तिका के मोबाईल फोन की कॉल डिटेल चेक कराया। इसमें राघव से उसके बातचीत के बेतहाशा साक्ष्य मिले।

हम अपने बेटे के साथ पुलिस–थानों के चक्कर लगाते रहे। अंशुल की मानसिक स्थिति का अनुमान मैं और मेरी पत्नी ही लगा सकते थे। जिस अज्ञात नंबर से अंशुल का नाम लेकर उनके पास फोन आ रहा था, वो भी राघव के नाम का फोन निकला। इस केस में राघव की संलिप्तता स्पष्ट थी, फिर भी हम बेवजह पुलिस के चक्करों में फँसे थे। अंशुल को कठिनाई से निकालने के लिए उसकी माँ उसके साथ खड़ी थी। मानसिक उत्पीड़न की दशा से हम सब गुजर रहे थे। जब हमारी यह स्थिति थी तो अंशुल की मनस्थिति क्या होगी, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अंततः वही हुआ, जो एक कोमल हृदय के निर्दोष बच्चे के साथ होता है। अंशुल अवसाद की स्थिति में आ गया। पुलिस अवन्तिका की तलाश का काम कर रही थी। अवन्तिका मिली। उस बिगड़ी लड़की ने राघव के साथ मिलकर अपने ही माँ–बाप से रुपये लेने के लिए ये ड्रामा रचा था। सिगरेट–शराब पीने, दोस्तों के साथ बड़े–बड़े होटलों–रेस्तराओं में घूमने–फिरने, ब्रांडेड कपड़े पहननेवाली लड़की के खर्चे बेतहाशा बढ़ गये थे। उस बिगड़ी लड़की ने अपने प्रेमी राघव के साथ मिलकर यह सब किया था। उसने एक बड़े शहर के होटल में रुककर माँ–पिता को फोन करवाकर रुपये ऐंठने का नाटक कर डाला। इसमें फँसाने के लिए उसने मेरे बेटे अंशुल चुना; क्योंकि अंशुल उन्हें सीधा, सरल लगा, जिसे सरलता से फँसाया जा सकता था। अवसाद के कारण अंशुल उस वर्ष परीक्षा न दे सका। एक वर्ष तक उसका उपचार चलता रहा। उसके सपने टूट गए। सबसे बढ़कर उसका आत्मविश्वास हिल गया था। मेरे बेटे को साहस के साथ पुनः खड़े होने में न जाने कितना समय लगेगा। उस बिगड़ी लड़की अवन्तिका ने मेरे बेटे के हृदय में लड़कियों के प्रति घृणा व आत्मविश्वास के जो बीज बो दिये हैं, उसे किस प्रकार नष्ट किया जा सकेगा, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। इस विवाद से यह कह सकते हैं केस से मेरा बेटा मुक्त हो चुका है, किन्तु अवन्तिका ने मेरे परिवार व अंशुल पर जो दुष्प्रभाव डाला है, वो हमारे मन से, हमारे जीवन से शीघ्र मिटनेवाला नहीं है। अवन्तिका के अपराध की कानून ने, उसके माता–पिता ने जो भी सजा दी हो, किन्तु मेरे बेटे की क्या त्रुटि थी, उसे इन सबकी सजा मिली?लड़के तो बदनाम होते ही हैं। सबकी संवेदनाएँ लड़कियों से जुड़ी रहती हैं। लड़कियाँ होती भी अच्छी हैं। घर की रौनक होती हैं। हम स्नेहवश उन्हें सोनचिरैया कहते हैं। किन्तु अवन्तिका जैसी लड़कियाँ भी तो हमारे समाज में, हमारे परिवारों में हैं। अंशुल जैसा सीधा, सरल, संस्कारी लड़का भी तो हमारे समाज, हमारे घरों में ही रहते हैं।

तीन वर्ष लग गये मेरे बेटे अंशुल को इस आघात से उबर कर सामान्य होने में। अब उसने पुनः कॉलेज ज्वाइन कर लिया है। उसके तीन वर्ष यूँ ही व्यर्थ चले गये। उसकी भरपाई तो नहीं हो सकती, किन्तु अब तो वह अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ नहीं जाने देना चाहता। अतः उसने कॉलेज की शिक्षा के साथ नौकरी के लिए कोचिंग भी ज्वाइन कर ली है। दिन में कॉलेज व शाम के शेष समय कोचिंग जाता है।

समय एक ऐसा चिकित्सक है, जो बड़े से बड़ा घाव भर देता है। देखते ही देखते तीन वर्ष और व्यतीत हो गये। अंशुल जीवन पथ पर आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ता जा रहा है। आज अंशुल को चार माह हो गये सरकारी विभाग के वाणिज्य और कर विभाग में ऑफिसर के पद पर कार्य करते हुए। बुरे वक्त और बुरे सपने की भाँति अवन्तिका नाम की लड़की को हम विस्मृत कर चुके हैं। अंशुल और उसकी माँ की इच्छा है कि अब हमें अंशुल का विवाह कर जीवन के एक बड़े उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाना चाहिए। आखिर अंशुल के जीवन का एक उद्देश्य अच्छी और मनपसंद नौकरी प्राप्त करना पूरा हो गया था। एक दिन अवसर देखकर पत्नी ने अंशुल से इस बात की चर्चा की। अंशुल ने अभी विवाह करने से स्पष्ट मना कर दिया। मना करते समय उसके चेहरे पर उभर रहे असमंजस व पीड़ा के भाव को मैंने भाँप लिया था। मैंने पत्नी को आगे कुछ न कहने का संकेत किया।

''मैं स्त्री होकर भी एक दूसरी स्त्री अवन्तिका के आचरण के विरुद्ध हूँ। सोचती हूँ इस समाज में न जाने कितनी अवन्तिकाएँ होंगी, जो अपनी इच्छापूर्ति के लिए पुरुषों को अपने जाल में फँसाती होंगी। तो मेरा बेटा अंशुल भी अवन्तिका के दिए गए चोट के कारण स्त्री जाति को संदेह के घेरे में रख रहा है, तो उसमें बुरा क्या है?

यद्यपि शनैः शनैः उसकी ये धारणाएँ भी परिवर्तित होगी कि समस्त स्त्रियाँ एक जैसी नहीं होतीं। इसमें कुछ समय लगेगा और वह अच्छा समय आने की मैं प्रतीक्षा करूँगी। पत्नी की बात सुनकर मैं भावविह्वल हो अंशुल की ओर देखने लगा जो अपने कक्ष में किसी से फोन पर हँस–हँसकर बातें कर रहा था। मेरे व पत्नी के होठों पर एक हल्की–सी मुस्कान फैल गयी। समय की नदी ऊँचे–नीचे, पथरीले रास्तों से निकलकर हरे–भरे मैदानों में सामान्य गति से आगे बढ़ने लगी थी।

लघुकथा

सीताराम गुप्ता
पीतमपुरा, दिल्ली
9555622323

प्रतिद्वंद्वी

गोष्ठी प्रारंभ होने का समय तो हो चुका था, लेकिन गोष्ठी प्रारंभ नहीं हुई थी। अभी आठ–दस व्यक्ति ही पहुँच पाए थे; क्योंकि आज सर्दी बहुत थी और सुबह घना कोहरा भी था। वैसे भी वक्ता को ज़्यादा जल्दी होती है पहुँचने की, श्रोता को नहीं, लेकिन जब श्रोता ही नहीं होंगे तो वक्ता कर भी क्या सकते हैं सिवाय इंतज़ार करने के। गोष्ठीपति ज्ञानेन्द्र गुप्तजी गाव तकिये के सहारे बैठे दो–तीन ख़ास लोगों से बतिया रहे थे। बाक़ी लोग अलग से किसी रोचक चर्चा में व्यस्त थे। तभी सुमित मिश्र ने अंदर प्रवेश करते हुए हाथ जोड़कर सबका अभिवादन किया।

सुमित मिश्र को देखते ही शांति प्रकाश ने चहकते हुए कहा– ''आइये मिश्रजी नमस्कार! आजकल तो आप कमाल का लिख रहे हैं। आपके लेख इतने अच्छे और प्रेरक होते हैं कि बस बार–बार उन्हें ही पढ़ते रहें। हमारी तो सोच ही बदल दी है आपने। सबसे पहले आपका कॉलम ही पढ़ता हूँ।'' मिश्रजी कुछ ज़्यादा ही सिकुड़ गए। सर्दी की वजह से नहीं, अपितु प्रशंसा सुनकर। बेहद विनम्र और संकोची स्वभाव के हैं मिश्रजी। दूसरों की प्रशंसा कम ही करते हैं। खुद के लिए भी ज़्यादा लच्छेदार बातें सुनना उन्हें पसंद नहीं। झूठी प्रशंसा करने और सुनने से तो उन्हें चिढ़ ही है। कोसों दूर है किसी भी प्रकार की राजनीति से।

इतने में गोष्ठीपति ज्ञानेन्द्र गुप्तजी की धीर–गंभीर आवाज़ गूँज उठी– ''शांति प्रकाश जी मैं तो इनके लेख बहुत पहले से देख रहा हूँ। कई बार तो बहुत अच्छा लिखते हैं। इनका धैर्य भी अनुकरणीय है। वस्तुतः हमारी गोष्ठी से जुड़े दस–पंद्रह व्यक्ति हैं, जो हीरे हैं और मिश्रजी को भी मैं उनमें से एक मानता हूँ।'' इसके बाद गुप्तजी सुमित मिश्र को संबोधित कर पूछने लगे– ''सुमित कोई किताब–विताब भी छपी कि नहीं अभी तक?'' सुमित मिश्र कुछ उत्तर देते इससे पहले ही गुप्तजी ने विषयांतरण करते हुए अगला प्रश्न दाग दिया– ''आपका कॉलम लगभग कितने शब्दों का होता है?मैं समझता हूँ सात–आठ सौ से अधिक शब्द नहीं होते होंगे। वैसे इस कॉलम का कलेवर थोड़ा विस्तृत हो जाए तो अच्छा रहे। इतने कम शब्दों में बात बनती नहीं।''

गुप्तजी अभी और कुछ पूछते या कहते, इससे पहले ही सिद्ध कुमार जैन ने प्रवेश किया और सुमित मिश्र पर नज़र पड़ते ही अपने मनोद्गार प्रकट करने लगे–''मिश्रजी हम तो आपके दीवाने!'' उनकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि ज्ञानेन्द्र गुप्तजी ने अत्यंत गंभीरतापूर्वक कहा–''पर्याप्त लोग आ चुके हैं। अब ऐसा करते हैं कि आज की गोष्ठी का प्रारंभ करते हैं। कृपया गपशप बंद कर दें। फालतू बातें बाद में जलपान के दौरान कर लेंगे।''

सभी आगंतुकों ने खड़े होकर आँखें बंद कर लीं और प्रार्थना में लीन हो गए। गोष्ठीपति ज्ञानेन्द्र गुप्तजी की प्रार्थना आज कुछ जल्दी ही सम्पन्न हो गई थी। उन्होंने आँखें तो नहीं खोलीं, लेकिन बीच–बीच में कनखियों से सुमित मिश्र को अवश्य देख लेते थे।

विरोध

प्रकाशजी की बेटी पायल पहले तो काफी दिनों तक शादी से इंकार ही करती रही, लेकिन जब घरवालों ने अधिक ज़ोर डाला तो उसने अपना फैसला सुनाते हुए कहा–''आप सबको मेरी शादी के लिए परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, मैंने अपना जीवन साथी ढूँढ लिया है।'' पायल तो अपना फैसला सुनाकर निश्चिंत–सी हो गई, पर घरवालों को तो जैसे साँप–सा सूँघ गया। सबके चेहरों पर आश्चर्य और दुविधा मिश्रित भाव तैरते दिखलाई देने लगे।

''क्या लड़का अपनी ही बिरादरी का है?'', प्रकाशजी ने जानना चाहा। 'नहीं'–पायल ने जवाब देते हुए प्रतिप्रश्न किया, ''पर उससे क्या फर्क पड़ता है?'' माँ ने लड़का करता क्या है?कैसा है?कहाँ रहता है?आदि कई प्रश्नों की बौछार एक साथ कर दी। पायल अविचल बनी रहकर न केवल सबके प्रश्नों की बौछार झेल गई, अपितु सबको निरुत्तर भी कर दिया। लड़का न केवल हैंडसम था, अपितु अच्छी नौकरी पर भी था। उससे मिलकर भी सभी घर वालों को प्रसन्नता ही हुई।

वैसे भी पायल के परिवार के लोग बहुत दकियानूसी विचारों के हैं भी नहीं लेकिन रिश्तेदारों को जब ये पता चला कि पायल बिरादरी से बाहर शादी कर रही है, तो उन्होंने आसमान सर पर उठा लिया। प्रकाशजी के एक चाचा रतनलाल तो किसी भी तरह शांत नहीं हो रहे थे। बिरादरी की अनेक संस्थाओं से जुड़े हैं रतनलाल। बड़ा सम्मान है बिरादरी में उनका। कहने लगे–'' मेरी तो नाक ही कट जाएगी बिरादरी में।'' रतनलाल बहुत बड़े बिजनेसमैन भी हैं। आजकल समस्याएँ भी कुछ ज़्यादा बढ़ गई हैं बिजनेस में। शादी और बिजनेस दोनों को जोड़ते हुए रतनलाल ने कहा–'' वैसे क्या कम समस्याएँ हैं?एक तो काम में मंदी और अनाप–शनाप टैक्सों का बोझ और साथ ही इस लड़की ने ऊपर से ये एक और झमेला खड़ा कर दिया।''

टेक्स की बात आने पर प्रकाशजी ने रतनलाल से कहा–''चाचाजी! लड़का टेक्सेशन डिपार्टमेंट में ही है और अच्छी पोस्ट पर है। असिस्टेंट कमिश्नर है।'' इतना सुनते ही रतनलाल चाचाजी के मन में एक अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। आनन्दानुभूति से चेहरे की मांसपेशियों का खिंचाव कम होने लगा, जिससे चेहरे पर आई कठोरता के स्थान पर कोमलता पसरने लगी। इस आनन्दानुभूति ने उनकी जिह्वा की कटुता को भी माधुर्य में बदलने में देर नहीं लगाई। कहने लगे, ''प्रकाश लड़का अच्छा है, पढ़ा–लिखा है और बारोजगार भी। जब लड़की को भी पसंद है, तो हमें भी मान ही लेना चाहिये।'' फिर चेतावनी के से स्वर में बोले–''आजकल के बच्चे बड़ों की सुनते ही कहाँ हैं?हमारी सहमति के बिना कहीं कोर्ट–वोर्ट में जाकर शादी कर ली तो और ज़्यादा फ़ज़ीहत होगी। इस बात को ज़्यादा तूल मत दो

कहानी

अंगूठी ताम्बे की

डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव
'शिवायन',
भिलाई, मध्यप्रदेश 490001,
मो. 9752606036

सुबह छः बजे ताला खोलने उठती हूँ, उस समय सुनयना देखती है कि कन्हैया की दादी न जाने कब से घूम रही है। बाउंड्री में खिले फूल किसी भी घर का हो, तोड़ते रहती है। कभी किसी बच्चे को देखती तो हँसती हुई उस बच्चे को फूल दे देती। किसी घर के सामने सुंदर रंगोली बनी रहती है, तो उसपर फूल डाल देती है, पर दिनभर चलती रहती है। शरीर शिथिल हो गया है, काफी बूढ़ी हो गयी है। पास पड़ोस के लोग बातें करने में कोई कमी करते, जैसे उनके दिन कभी नहीं परिवर्तित होगा, ऐसा घमंड में आकर कहते रहते हैं कि पगली हो गयी है। एक ही बात को बढ़ा–चढ़ाकर कहने में उनको बड़ा मजा आता है।

सुनयना सोचने लगी, बुढ़ापा ही उसका रोग है। वह पगली कहीं से भी नजर नहीं आती है। सुनयना को देखती है, तो हँसकर नमस्ते करती है। साड़ी सँभाल नहीं सकती, इसीलिए उसकी बहु लक्ष्मी उसे लंबा–सा मैक्सी पहना दिये रहती है। थक जाती है, तो किसी के भी घर के सामने बैठ जाती है। सुनयना को उसका बार–बार बीता हुआ अतीत याद आ रहा है कि उस समय वह कितने अच्छे से रहती थी। तीन लड़कियाँ और एक बेटा मोहन है। लड़कियों की शादी–ब्याह कर दी है। वे सभी अपने ससुराल में रहती हैं कभी कोई उत्सव मंगल होता है तो कुछ दिन के लिए आ जाती है।

कितने उत्साह और उमंग से उसने अपने बेटे मोहन का विवाह किया था। उसकी बहु लक्ष्मी भी दिव्य सुन्दरी थी। उसे देखकर वह फूली नहीं समाती थी। रसोई में बहुरानी लक्ष्मी को पैर भी नहीं रखने देती थी। घर का सब काम स्वयं कर लेतीं पास पड़ोस के लोग उसे समझाते तुम यह सब गलत कर रही हो। हमें क्या है, आपकी बहु है, आप जैसा चाहें, वैसा व्यवहार करें। लेकिन बुढ़ापे में जब आपका शरीर शिथिल हो जाएगा, आँख से दिखाई नहीं देगा, कान से सुनाई नहीं देगा, तब आपकी बहु लक्ष्मी अपने इन सुनहरी दिनों की याद कर क्या आपको अच्छे से रखेगी?तब उसका जवाब होता, उसे मैं क्या कहूँ, यह तो वक्त की करिश्मा है। जैसे समय होगा, वैसे ही उसका सामना करूँगी।

तीन वर्ष बाद बहु लक्ष्मी ने एक सुंदर से बेटे को जन्म दिया। इस सुखद समाचार को बताने के लिए शिवमंगल जी जल्दी–जल्दी बाइक से घर आ रहे थे। तभी एक बाइक वाले ने ऐसे जोर से शिवमंगल जी की बाइक को टक्कर दी। गिरते ही शिवमंगल के प्राण पखेरू उड़ गये। यह खबर हवा की भाँति चारो तरफ फैल गई। बहु लक्ष्मी को भी पता चला, वह हॉस्पिटल में लेटी हुई रोने लगी। घर के सभी सदस्य दौड़ते भागते उस जगह पहुँच गये। उस दर्दनाक दुर्घटना को देखकर दादी भी बेहोश हो गयी।

दादी होश में जब आयी, तब उसके बेटे मोहने ने बतलाया, तुम्हारी बहु लक्ष्मी को बेटा हुआ है। इस बात को बतलाने के लिए पिताजी जल्दी–जल्दी घर जा रहे थे, तभी यह दुर्घटना हुई। दादी बहुत समझदार थी। उसे ईश्वर पर विश्वास था, उसने गंभीर होकर कहा–मेरे घर मेरा कन्हैया आ गया और उस पोते को अपने गले से लगा लिया। समय की धारा में दादी दिन–रात अपने पोते का ख्याल रखतीं उसे खिलाती उसके साथ तुतलाकर बोलती। जब वह बोलता तो खुशी से गद्‌गद हो जाती। उसके साथ खेलते हुए गाना गाती, उसे गोदी में लेकर इधर–उधर घुमाती रहती। उसके साथ बातें करती हुई अपने जीवन साथी के वियोग को भी वह भूल गयी थी। कन्हैया ही उसका सब कुछ था।

सुबह सोकर उठती तो सबसे पहले यही पूछती कन्हैया उठ गया है क्या?कन्हैया के साथ उसके दिन–रात कैसे व्यतीत हो रहे थे, यह उसे पता ही नहीं चलता। पड़ोस में ही कुछ दूरी पर बच्चों का शिशुमहल था। लक्ष्मी उसे गोदी में लेकर स्कूल पहुँच जाती और उसे लेने के लिए आधे घंटे पहले से ही स्कूल में पहुँच जाती। कभी–कभी उसकी बहु लक्ष्मी झल्लाती, आप कन्हैया की आदत को बिगाड़ रही हो। उसे चलने दिया करो, अपने ही हाथ से खाना खाने दिया करो। इतना बड़ा हो गया है, पर जिद्दी इतना अधिक हो गया है कि दिनभर दादी कहते रहता है और आपके ही हाथ से खाना खाता है।

मोहन बेटा और बहु अत्यधिक परेशान होकर उसे मिडिल और हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए नवोदय स्कूल के होस्टल में भर्ती कर आ गये। कन्हैया के होस्टल चले जाने से दादी दिन–रात रोते रहती। उसकी बहु लक्ष्मी ने कहा–आप दिनरात मातम क्यों मनाती हो?वह अच्छे–से पढ़–लिखकर आपका लायक पोता बनकर घर आएगा। कन्हैया की एक बहन भी हो गयी थी, उसका नाम कामिनी रखा गया था, पर उसकी बहु लक्ष्मी कामिनी को एक मिनट के लिए भी दादी के पास नहीं छोड़ती थी। इसीलिए वह कामिनी की तरफ देखती भी नहीं थी। उसे चिंता सिर्फ कन्हैया की रहती थी। पड़ोस के बच्चों से बराबर पूछती रहती। तुम लोगों की परीक्षा कब खत्म होगी। फिर मेरा कन्हैया पोता घर आएगा, यह सोचते ही अपने कमरे का दरवाजा खोल देती थी और बड़बड़ाते रहती–मेरा कन्हैया थका हुआ आएगा तो दरवाजा खुला देखकर कितना खुश हो जाएगा।

एक दिन रात में दादी को नींद आ गई और घर का दरवाजा खुला रहा। उस दिन दो चोर अंदर घुस गये और टी.वी. और पेटी को उठाकर ले गये। सुबह घर में कोहराम मच गया। बहु रो–रोकर कहने लगी। मेरी पेटी में क्या नहीं था! सब कुछ चोर ले गया। अब बहु लक्ष्मी दादी को देखती तो चिड़चिड़ी–सी हो गयी थी और बात–बात में दादी को ताने मारने लगी और कुछ भी उल–जलुल खरी–खोटी सुनाते रहती। सुनते–सुनते एक दिन दादी क्रोधित होकर कहने लगी। अपनी शादी में कौन–सा खजाना लेकर आयी थी। सब कुछ तो नकली ही था। मैंने ही तुम्हारे लिए सोने का हार और हाथ का कंगन बनवायी थी। उसे भी तूने कुछ साल बाद नये डिजाइन का लेना है, कहकर दुकान में बेच आयी थी। कहीं भी जाती हो तो आखिर वेन्टेक्स के नकली गहने पहनकर जाती हो। यह सुनकर लक्ष्मी को बहुत गुस्सा आया। एक दिन उसने अपने पति मोहन के द्वारा अपनी सास दादी के सब गहने गले, कान और हाथ की चूड़ी भी निकलवा ली और अपने पास

रख ली। नकली एक पतली–सी चैन गले में डाल दिये और हाथ में प्लास्टिक की चूड़ी और कान में नकली फूल पहना दी। सुबह उठते ही दादी अपना चेहरा दर्पण में देखकर घबरा गई। सोचने लगी कि ये सब क्या हो रहा है, कुछ देर पत्थर की बूत बनी बैठी रही। उस दिन उसे न खाने की इच्छा हुई और न ही अच्छी साड़ी पहनने की। उसने गले की नकली चैन व चूड़ी, कान से नकली फूल को निकालकर फेंक दिया। प्रतिशोध की भावना तो हर जीवधारी की पहली पहचान होती है। फिर दादी भला क्यों अछूती रह सकती। मिसेज शर्मा पड़ोस में रहती है। उसको पड़ोसियों की बातों को बढ़ा–चढ़ाकर कहने की आदत ही बन गयी थी। एक प्रकार से वह न्यूज रिपोर्टर जैसे काम करने में माहिर है। एक दिन दादी से उसका सामना हो गया, तो वह इस प्रकार दु:खी हो गई, मानो किसी ने उसे विशेष चोट पहुँचायी है। दादी ने घबड़ाकर कहा–क्या बात हो गयी है?इसपर मिससे वर्मा कहती है, मेरे साथ क्या होगा?मैं तो आपको देखकर दुखी हो गयी हूँ। बताइए आजकल आप की लक्ष्मी बहु के साथ कैसे निभ रही है। दादी हँसकर कहने लगी–अच्छी–भली तो हूँ। मुझे कोई तकलीफ नहीं है। जीवनसाथी का वियोग ही मेरा सबसे बड़ा दु:ख है?इसमें बहु लक्ष्मी क्या कर सकती है?यह तो मेरे कर्मों का ही फल है। मिसेज शर्मा हार माननेवालों में से नहीं है?क्या आपकी बहु आपको कोई दु:ख नहीं दे रही है?दादी ने मुस्कुराकर कहा–बिल्कुल नहीं?वह तो अपनी जगह बहुत अच्छे से मेरी देखभाल करती है। यह सुन मिसेज शर्मा की बोलती बंद हो गयी। उस दिन उसे लगा दादी कितनी समझदार है, अपने घर की बात पर किसी दूसरे को हवा भी नहीं लगने देती है।

जीवन के अंतिम पड़ाव में पहुँचकर भी दादी निराश नहीं हुई है। सुख–दुख की धूप छाँव तो सभी के जिंदगी में रहता ही है। दादी कभी गीता पढ़ती, कभी रामचरितमानस पढ़ती है। इससे उन्हें संतुष्टि मिलती है। अक्सर अपने पड़ोसियों से दादी यही कहती है। इन दोनों किताबों में जिंदगी की सार्थकता नजर आती है।

सभी के जीवन की अनंत यात्रा का अंत होना तो निश्चित है, फिर किस बात की चिंता करूँ। अपने हाथ की अंगूली को देखकर सोचती कि इस अंगूठी को बेटे मोहन ने क्यों नहीं निकाला। वह स्वयं ही अपने हाथ से अंगूठी को निकालने की कोशिश करने लगी, पर वह अंगूठी हाथ की अंगुली में इस प्रकार चिपक गई है कि कोशिश करने पर भी नहीं निकल रही है। वह है तो तांबे की अंगूठी, पर उसमें साँई बाबा की छवि अंकित है। दादी को समझ में आ गया कि ईश्वर कितना दयालु है वह कोई न कोई तरीके से जाने की राह दिखा देता है, अपने हाथ की अंगूठी को देखती और उसे माथे में लगाकर असीम शान्ति की अनुभूति से खुश हो जाती। यह क्या कम है?आज ईश्वर ने मुझे कितना बड़ा सहारा दे दिया है कि मेरे पास यह मात्र तांबे की अंगूठी नहीं है, यह तो साँई बाबा की कृपा दृष्टि है।

कविता

बाल संसार

निहार रंजन
दिल्ली छावनी
मो.–09968062186

कुसमित, पुष्पित, पल्लवित, सुंदर, प्यारा,
मनोहारी, न्यारा, अद्‌भुत है वात्सल्य हमारा
कोमल गालों पर बिखरी मुस्कान
हर लेता गम का हाला
ममता करुणा वात्सल्य प्रेम से
भर देता जीवन का प्याला
कहते हैं बच्चे भगवान के रूप हैं सहज हैं सरल हैं
नन्हीं सी जान है मधुर हैं कोमल हैं तरल हैं
ना ईर्ष्या है ना विषाद है कभी शांत तो कभी चंचल है
न जाने किसी नजर लगी अबोध के
जीवन में भी आज गरल है
कहीं होता खिलौने लाख तो किसी को
टूटी गुड़ियाँ भी नसीब नहीं
किसी के तन सजे वस्त्र रंग–बिरंगे के तन को
चिथड़े का भी भार नहीं
कहीं बिखरे होते मेवे मिष्टी किसी को टुकड़ों का मिलता दान नहीं
कहीं बहे एसी का बयार किसी को
स्नेह के ठंडक का भी भान नहीं
कोमल हाथों से जुटन धोते ढाबों पर
कोई रेस्त्राँ में झाड़ू देता
कोई गंदगी सफाई करे रेल में
कोई सड़क में करतब करता
कोई करता चाकरी घर में
कोई फैक्ट्री में दिन रात रगड़ता
कोई खेतों में तो कोई जानवरों के पीछे चलता,
हाय जीवन को तरसता
कहते हैं स्कूल बढ़े हैं कॉलेज खुले हैं
शिक्षा का विकास हुआ है।
गर पढ़ लिख लिये तो गाँव छोड़ परदेश चले हैं,
मिट्टी से दुराव हुआ है
स्वजन परिजन सब दूर चले हैं
'स्व' का ही बस विकास हुआ है
नहीं सुरक्षित आज कोमल कोपल
जीवन मूल्य का बस ह्रास हुआ है
बाल प्रथा बाल सुरक्षा बेटी बचाओ
सुशोभित हो रहा नारों से
टी.वी. पर पेपर मैगजीन में चर्चा रहता है
बरकरार भाषणों का भरमार
बोल तोलकर कोई लेता पुरस्कार
तो किसी की होती जय–जयकार
अब चलो, उठो सब हिलमिल कुछ करें
उठें खिलखिला बाल संसार।

कहानी

दंश

संगीता सिंह 'भावना'
सह संपादक त्रैमासिक पत्रिका
'करुणावती साहित्य धारा' शिवपुर,
वाराणसी मो. 9415810055

वैदेही आज भी उस मंजर को याद करती है तो अंदर तक काँप जाती है, तब महज उसकी उम्र दस साल की रही होगी। वह जनवरी की कँपा देनेवाली सर्द रात थी और वैदेही उस सर्द रात में घर से बाहर कर दी गई थी।हालाँकि तब वह इतनी समझदार नहीं थी, पर माँ–बाप के बीच होनेवाले रोज की किचकिच से वह अनभिज्ञ न थी। माँ का मेरे पति मोह जायज था, क्योंकि उन्होंने नौ महीने अपने पेट में रखकर अपने खून से सींचा था, क्या फर्क पड़ता है, अगर वैदेही सामान्य नहीं है।पर बाबा, जिनको समाज में मेरी वजह से शर्मिंदगी उठाना पड़ता था, वो कतई उसे अपने साथ रखने को तैयार नहीं थे। एक रात झगड़े का स्वरूप इतना बिगड़ गया कि उन्होंने मुझे बिना कुछ सोचे समझे घर से बाहर निकाल दिया और मैं पहुँच गई किन्नरी के समुदाय में, हालाँकि माँ ने कई बार अपने असफल प्रयास किये मुझे तक पहुँचने की, पर बाबा का सख्त पहरा उन्हें कभी मुझसे मिलने नहीं दिया। भला हो उस समुदाय का, जहाँ मुझ जैसी न जाने कितनी वैदेहियों को पनाह दिया, पढ़ाया–लिखाया, नहीं तो इस समाज की घृणित सोच के आगे कब तक जी पाती भला..?जहाँ अपने सगे लोग किनारा कर लिये, वहीं इस परिवार से जड़कर मैंने एक नयी जिंदगी की शुरुआत की। पढ़ने के क्रम में साथ ही पढ़नेवाले निशांत ने जब उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया तो वह अंदर से काँप गयी और उसने निश्चय किया कि वह अपने जीवन के बारे में सब कुछ निशांत से साफ और स्पष्ट बता देगी और एक दिन जब क्लास खत्म होने पर निशांत उसे कॉफी हाउस लेकर गया तो उसने अपने मन की सारी बातें निशांत से बता देती। जब वो छोटी थी और अपनी भोली आँखों और मासूम समझ की अँगुलियों से दुनिया का बहुरूपिया चेहरा टटोल रही थी, तब लोगों की बेसिर–पैर की बातें और अनगिनत सवालों और संबोधनों से उसका अंतर्मन लहूलुहान हो जाती और घर कोई सुनसान कोना तलाश करती, जहाँ से उसे दुनिया के अपमान भरे शब्दों का सामना न करना पड़े। हाँ, एक बात जो अच्छी थी, वो यह कि माँ का हमेशा साथ मिला और उसके प्यार भरे मरहम मुझे हमेशा एक नयी ऊर्जा देता। पर मैंने माँ की बेबसी को उस समय जरूर महसूस किया, जब उसको दो बड़ी बहनों को देख लोग बड़ी निर्ममता से पूछते–अरे रंभा! तुम्हारी ये बेटी क्यों असामान्य हरकत करते रहती हैं, जबकि बाकी दोनों बेटियाँ तो सामान्य लगती हैं, मेरी मानो इसे अपने साथ रखकर तुम समाज से बहुत बड़ा बगावत कर रही हो, तब माँ बड़े ही आत्मविश्वास से कहती–जब मुझे अपने बच्चे से कोई परेशानी नहीं तो आपलोग क्यों नाहक अपनी ऊर्जा व्यर्थ करते हो?तब माँ को भी कहाँ पता था कि जिस बच्चे के लिए वह समाज से लड़ सकती है, वह अपने ही घर में इतनी असहाय हो जाएगी। क्या बिता होगा उस माँ के दिल पर, क्योंकि एक माँ को उसके बच्चे से बिछड़ने का गम एक माँ ही जानती है। वैदेही को लगा था, उसके बारे में सब जानकर निशांत उससे नफरत करने लगेगा, पर इसके विपरीत निशांत ने बड़े ही धैर्य से वैदेही को समझाया–देखो, वैदेही! तुम मेरे काबिल हो या नहीं, यह मैं नहीं जानता, मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि भगवान ने तुम्हें बनाते समय भले ही भूल से तुम्हारे शारीरिक संरचना में भिन्नता कर दिया है, पर तुम्हारा मन बहुत ही निर्मल व सुंदर है और जाने–अनजाने ही सही में इस निर्मल मन की उपासना करने लगा हूँ। मेरे लिए शारीरिक जरूरत से ज्यादा महत्वपूर्ण मन का मिलन है और मैं तुम्हें लेकर भविष्य के सपने देखने लगा हूँ।बोलो वैदेही!दोगी न मेरा साथ?

वैदेही को ईश्वर ने सिर्फ खूबसूरत ही नहीं, समझदार भी बनाया था, उसका कोमल मन निशांत की बातों से पिघलने लगा और उसने निशांत के हाथों को अपनी दोनों हथेलियों में कसकर जकड़ लिया और उसकी आँखों में देखते हुए बोली–'निशांत! तुम बहुत अच्छे हो। ऐसा नहीं कि मेरी जिंदगी में आनेवाले तुम पहले व्यक्ति हो, पर आजतक जिसने भी तुझसे दोस्ती करना चाहा, उसमें शारीरिक स्वार्थ जुड़ा हुआ था और मैं उन्हें अपनी असामान्यतया बताती तो मुझसे दोस्ती करना तो दूर, बात भी करना पसंद नहीं करते। यह समाज ऐसा ही है, यहाँ रूप की पूजा होती है, गुणों को देखनेवाले तुम जैसे शायद ही बिरले कोई होता है। फिर भी जीवन बहुत लंबी है, जो चीजें आज महत्वहीन लग रही हैं, जरूरी नहीं कि हमेशा ही लगे। अगर जीवन के किसी भी मोड़ पर तुम्हें कोई परिवर्तन करना पड़े तो तुम बेहिचक करना, मैं सदैव तुम्हारा साथ दूँगी। अगर कोई इंसान सच में अच्छा होता है तो उसकी अच्छाइयाँ कभी धूमिल नहीं होती है, उसे कठिन से कठिन काम भी बड़ी आसानी से बनते जाते हैं और निशांत के साथ भी ऐसा ही हुआ। जब वह वैदेही से शादी का प्रस्ताव लेकर किन्नर समुदाय के मुखिया अपराजिता धाय से मिला, जिसकी शरण में वैदेही रहती थी, तो वो तुरंत तैयार हो गयी और बड़े ही शांत भाव से उन दोनों को समझाया। देखो, बच्चो! ये दुनियाँ ऐसी हैं, जो कदम–कदम पर तुम्हारी राह में मुसीबत बनकर आएगी, पर उनसे कभी घबराना नहीं, बल्कि डटकर मुकाबला करना। प्रेम करना ईश्वर की इबादत करना है, जो सबके नसीब में नहीं मिलता, मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम दोनों के साथ है, जाओ और इस धरती पर एक नये युग का निर्माण करो।निशांत और वैदेही जल्द ही शादी के बंधन में बँधकर खुशहाल जीवन बिताने लगे, पर निशांत की माँ अक्सर ही दोनों से बच्चे की जिद्द करने लगी। शुरू–शुरू में तो निशांत टालमटोल कर माँ को समझा देता, पर जब काफी समय बीत गया तो उन्हें थोड़ी चिंता हुई और गाहे–ब–गाहे निशांत और वैदेही के सामने वह अपनी चिंता को रखती, जिससे थोड़ा माहौल उदास हो जाता।घर में निशांत के और भाइयों के बच्चे थे, पर माँ तो एक ही जिद लगाकर बैठी थी कि उसे उसके बच्चे का मुँह देखना है, सो हारकर निशांत ने एक दिन माँ को जो बतलाया वह बिजली के झटके से कम नहीं था।माँ ने तो दूसरी शादी का प्रस्ताव दे डाला, पर निशांत के आगे उसकी एक न चली। अब वैदेही यहाँ भी नित नए अपमान से अपमानित होते रहती, पर इसका जिक्र वह निशांत से कभी नहीं करती, घर में सबका रवैया अब पहले जैसा नहीं रह गया था, पर वैदेही इसे भी अपने कर्म का रेख समझकर सब सहते जाती। कभी–कभी विपति भी आश्चर्यजनक परिवर्तन करती है, हुआ ये कि एक दिन निशांत से बड़े भाई

का बेटा स्वप्निल बहुत बीमार हो गया और देखते–देखते उसकी हालत बिगड़ती गई। डॉक्टर ने उसे अविलंब खून चढ़ाने को बोला, तब ब्लड बैंक से ब्लड मिलना एक बेहद ही पेचीदा काम था, सो घर के सारे सदस्यों ने एक–एक कर रक्त का परीक्षण करवाया, पर अफसोस किसी का भी ब्लड स्वप्निल के ब्लड से मैच नहीं किया। माहौल काफी गमगीन हो रहा था और इसकी झलक घर के सभी सदस्यों पर स्पष्ट झलक रही थी। डॉक्टर भी काफी परेशान थे और किसी भी हालत में उन्हें ब्लड की व्यवस्था करनी थी, अन्यथा स्वप्निल के जान को भी खतरा हो सकता था। इधर घर में किसी का भी ध्यान वैदेही की पर नहीं या या जान बूझकर लोगों ने उसकी जरूरत नहीं समझी, पर वैदेही को जब पता चला कि स्वप्निल जीवन और मौत से जूझ रहा है, तो उसने डॉक्टर से अपने रक्त के परीक्षण की गुजारिश किया, पर घर के लोगों ने सिर्फ निशांत को छोड़कर इसका विरोध किया और बड़े ही कटाक्षपूर्ण लहजे में बोले–'हमलोग ये कभी नहीं चाहेंगे कि हमारे बच्चे के रगों में एक हिजड़ा का खून दौड़े। डॉक्टर साहब आप कहीं और से व्यवस्था करिए, हम सब इसकी कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हैं। अंत में डॉक्टर ने समझा– बुझाकर सबको शांत किया और जब वैदेही के रक्त की जाँच की तो वह स्वप्निल के रक्त से सटीक मैच कर गया। अब डॉक्टर ने दोनों पक्षों को परिवारवालों के सामने रख दिया तो वैदेही का खून चढ़ाकर स्वप्निल के जिंदगी को बचाया जाये या फिर समाज के झूठे आडम्बर को परंपरागत रूप देकर स्वप्निल की जिंदगी को तबाह होने को छोड़ दिया जाए। परिवारवालों की स्थिति अब काफी दयनीय हो गई थी, एक तरफ स्वप्निल का जीवन, दूसरी तरफ निरर्थक ढोंग। स्वप्निल की हालत लगातार बिगड़ती जा रही थी, सो घरवालों को अपने किये पर पछतावा हुआ और वे आहिस्ता से बढ़कर वैदेही के गले से लगकर फफककर रो पड़े और माँ जो हमेशा वैदेही को ताने सुनाया करती थी, बोली–अब मेरे स्वप्निल की जिंदगी तुम्हारे भरोसे है, उसे बचा लो वैदेही! इंसानियत की कीमत वैदेही भलीभाँति जानती थी, उसे अपने घरवालों से कोई शिकायत नहीं थी, बल्कि उनके चेहरे पर उभरते आशा और निराशा के भाव को देखकर उसका मन द्रवित हो रहा था, वह अपने दोनों हाथों को जोड़कर दुनिया के उस रचयिता से प्रार्थना करने लगी, ताकि उसे माँ की गोद न उजड़े, जो अपने बच्चे के जीवन की फरियाद कर रही थी।

कविताएँ

गौरैया

विन्ध्य प्रकाश मिश्र
नरई संग्रामगढ़, प्रतापगढ़ उ.प्र.
मो0 9198989831

आँगन के कोनों में आकर
चीं चीं गीत सुनाती थी
चावल के दानें पाकर
पूरा परिवार बुलाती थी
मीठी मीठी मधुर स्वरों में
गुनगुन गीत गाती थी
गौरैया आँगन में आकर
फुदक फुदक इठलाती थी
दबा चोंच में चावल के दाने
उड़ी घोंसले पर बैठी
छोटे बच्चों को वत्सलता से
खिलाती सुख पाती थी
मेरे बचपन की यादों संग
आज याद आ जाती है
मीठी ध्वनि है पर छोटे से
नभ की नाप से आती थी
गौरैया है जुड़ी याद संग
आँगन में चहक सुनाती थी
तिनका तिनका जोड़ नीड़ में
सुंदर गूँथ लगाती थी
कितना करती काम सुबह से
थकती न सुस्ताती थी
कुछ दानें पाकर खुश होती
दिन भर धूम मचाती थी
अगर पकड़ना चाहू उसको
फुर से वह उड़ जाती थी
छोटे छोटे बच्चे सात
रहे घोंसले में दिन रात
उग रे थे पंख नये
उड़ना है कुछ दिन की बात
रहे ताकते दिन में माता को
चिड़िया उसे चुनाती थी
कम खाती पर ले आती
भर भर चोंच खिलाती थी
फड़फड़ करती नहाती थी
गौरैया आँगन में आकर
फुदक फुदक इठलाती थी।

मौसम में बहार आई

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
पंडरिया, कवर्धा,छग.

एक दिन आया है
गर्मी में भी पानी लाया है
जब उगना था धूप
तब बरसात आया है
कुदरत की करिश्मा तो देखो
कुल पंखा चलाने के दिनों में
साल स्वेटर निकलवाया है
ऐसा दिन आया है
सूखे के दिनों में हरियाली है छोई
गरज गरज कर बादल पानी है लाई
सोंधी–सोंधी माटी की खुशबू
सबके दिलों को महकाई
किसान खुश हुआ
मौसम में बहार है आई
बाग बगीचे है हरा भरा
सब तरफ हरियाली है छाई
मौसम में बहार है आई
पेड़ पौधे हो गये हरा भरा
पेड़ों में पत्ती है आई
हरा भरा सब देखकर
मन में खुशियाँ समाई
पानी की बूँदें देखो
मिट्टी की खुशबू है आई
मौसम में बहार है आई
ओले गिरा धरती पर
मोती जैसे चमक रही
अँधियारी के दिनों में
अपनी रोशनी बिखेर रही
सब जगा बर्फ बारी हो रही
कुदरत करिश्मा दिखा रही
सूखी सूखी धरती पर
मोतिया है आई
मौसम में बहार है आई
बिजली चमक रही है
मौसम अंगड़ाई ले रही है
मेंढक की आवाज
खेतों में आई
मौसम में बहार है आई।

आलेख

गहन संवेदना के वाहक : व्यंग्य

डॉ. अवधेश चन्सौलिया,
प्रो. हिन्दी, डी.एम.
दीनदयाल नगर, ग्वालियर
मो. 9425187203

व्यंग्य लिखना सबसे कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। कठिन इसलिए क्योंकि हर कोई व्यंग्य लेखक युग की विसंगतियाँ, इतनी गहराई से नहीं देख पाता, जितनी गहराई से देखना उन्हें अपेक्षित होता है। समाज में जीवन की आंतरिकता में जाना, उसके अंतर्मन को पढ़कर उसके विरोधाभास को विश्लेषण कर निष्कर्ष देना, हर किसी के सामर्थ्य की बात नहीं है। व्यंग्य लेखन चुनौतीपूर्ण कार्य भी है, क्योंकि इसमें खतरे बहुत हैं, संगति का अनुपात जहाँ बिगड़ने लगता है, वहीं से व्यंग्य सक्रिय हो जाता है। हमने जो प्रतिमान निर्मित किये हैं, उसका उल्लंघन जब होने लगता है, तो व्यंग्य का चाबुक अपना काम करने लगता है, उल्लंघन करनेवाले कोई साधारण व्यक्ति नहीं होते, वे बहुत पावर फुल होते हैं। चाहे वह धर्म का क्षेत्र हो, राजनीति या व्यवसाय का, सभी की बागडोर प्रभाव लोगों के पास ही रहती है। उनकी पोल खोलना, उनको नंगा करना बहुत ही जोखित भरा कार्य है, परसाई की तरह व्यंग्यकार को पिटना भी पड़ सकता है और कभी किसी को जीवन से हाथ भी धोना पड़ सकता है। व्यंग्यकार को मोह, माया त्यागनी ही पड़ती है, तभी तो मध्ययुग के महान व्यंग्यकार कबीरदास जी को कहना पड़ा—

कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना, चलै हमारे साथ।।

व्यंग्य सामाजिक जीवन की समीक्षा है, वह सोचने के लिए बाध्य करता है, पढ़ने या सुननेवालों की चेतना को झकझोर देता है, डॉ. महेन्द्र अग्रवाल एक ऐसे ही व्यंग्य लेखक हैं, उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत को 17 कृतियाँ प्रदान की हैं, उसमें ग़ज़ल संग्रह, आलोचना, उपन्यास और व्यंग्य समाहित हैं। स्वरों की समाजवादी संवेदनाएँ व्यंग्य संग्रह मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है। ग़ज़ल पर आपने बहुत काम किया है और अपने इस कार्य के लिए वे अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत भी किये जा चुके हैं। वर्तमान में अग्रवाल जो नई ग़ज़ल पत्रिका का बखूबी संपादन कर रहे हैं। ग़ज़ल का क्षेत्र हो या व्यंग्य का दोनों में उनकी पकड़ बहुत मजबूत है।

समीक्ष्य कृति 'झंडा तेरा–झंडा मेरा' व्यंग्य संग्रह में कुल 12 व्यंग्य सम्मिलित हैं। संग्रह का पहला व्यंग्य है–'लिटरेरी इलनेस इन इंटेलीजेंट' (बुद्धिजीवियों में साहित्यिक बीमारियाँ) इस व्यंग्य में साहित्यकारों पर चुटीले व्यंग्यवाण बरसाने गये हैं। व्यंग्यकार पेशे से केमिस्ट हैं, अतः उन्हें विभिन्न बीमारियों का अच्छा ज्ञान है। आयुर्वेद रत्न की डिग्री प्राप्त अग्रवालजी उन बीमारियों का हिन्दी अनुवाद सटीक कर सके हैं। हर कोई व्यंग्यकार इतनी सारी बीमारियों और उनके सही इलाज का ज्ञान नहीं रख सकता। महेन्द्रजी एक मँजे हुए व्यंग्यकार हैं। उनके व्यंग्य में हास्य का अद्‌भुत मेल है, इस दृष्टि से ये पंक्तिया उल्लेखनीय हैं–'एबनार्मल पोइटिक एबार्शन' (असामान्य काव्यात्मक गर्भपात) भी नवोदितों से लेकर प्रौढ़ कवियों मंचीय उठाइगीरों में मिलनेवाली सामान्य बीमारी है, इसमें सृजनावस्था के कारण कच्ची पक्की, अधपकी सामग्री को अपने मन मस्तिष्क में संजोये रखने का प्रयास निष्फल होने से रचनाएँ काल–कवलित हो जाती हैं। मानसिक क्षोभ होना इस रोग का प्रमुख लक्षण है, कुछ विशेषज्ञ इसे 'लिटरेरी नार्मल एबार्शन' (सामान्य साहित्यिक गर्भपात) कहते हैं। इसके नामकरण को लेकर विवाद है, किन्तु लक्षण और प्रभान्विति के संबंध में सब एकमत हैं।(पृ. 17)

साहित्य के गेंग में साहित्यकारों की चालबाजियों, विसंगतियों और विद्रूपताओं को बहुत ही प्रभावी ढंग से उजागर किया गया है। आज साहित्यकारों में अवसरवाद, तिकड़मगीरी तथा बाजारवाद के भाव बड़ी तेजी से पनप रहे हैं। नवोदित साहित्यकारों को ठगनेवाली अनेक साहित्य संस्थाएँ इस देश में कुकुरमुत्ते की तरह फैल गयी हैं, जो रुपये–पैसे लेकर पुस्तकों का लोकार्पण कराती हैं और उन्हें पुरस्कृत करती हैं। पुरस्कारों और सामानों के आपसी आदान–प्रदान बहुतायत में हो रहा है। रकम देकर अपने पक्ष में प्रशंसात्मक समीक्षाएँ लिखाने का काम अनवरत चल रहा है। व्यंग्यकार की पैनी दृष्टि से साहित्य के ये कारोबार बच नहीं पाते। वह तुरंत व्यंग्य के गोले दागता है। अलग–अलग साहित्यिक गेंगों में दो–चार से लेकर पच्चीस–पचास तक सदस्य हो सकते हैं। गेंग लीडर अपने इन पूतों को काव्यपाठ कराने के लिए गोष्ठियाँ आयोजित कराता है। कभी कभी बारी बारी से शाल श्रीफल दे दिलाकर उन्हें खुश रखता है, ताकि वे बगावत न कर सकें। सामूहिक संकलनों के नाम पर गिरोह का लीडर इन चेले चपाटों से ही सहकारिता शुल्क वसूल कर इसकी एकाध (अ) कवितामय फोटू के छपवाकर संतुष्ट रखता है।(पृ. 23)

इसी तरह एक अन्य कथन द्रष्टव्य है–देखो करने को विशेष कुछ नहीं है, बस अपने गेंग का सदस्यता–फॉर्म भरकर आजीवन सदस्यता शुल्क पाँच हजार रुपये जमा कर सदस्य बनना है। इसके बाद वर्षभर की साहित्यिक गतिविधियों के लिए 1100 रुपये प्रतिवर्ष का सहयोग करना है।(पृ. 25)

शायरी की सामान्य विशेषताएँ व्यंग्य में जहाँ एक ओर शायरी पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है, वहीं दूसरी ओर उसमें व्याप्त कमजोरियों पर भी व्यंग्यकार ने पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। 'चलो चलें श्मशान' व्यंग्य निबंध मनुष्य की असंवेदनशीलता का पर्दाफाश बड़े ही बेबाकी से करता है। श्मशान में सैकड़ों लोग संवेदना के बजाय अपने–अपने अनुभवों दुनियादारी एवं लेखे–जोखों के हिसाब में लग जाते हैं। अनर्गल वार्तालाप हँसी ठट्ठा और राजनैतिक प्रपंचों में उलझकर लोग अपने दायित्वों और मर्यादाओं को भी भूल जाते हैं, वे ये भूल जाते हैं कि वे गमी में आये हैं न कि परिसंवाद में, व्यंग्यकार का कथन है कि मेरे अनुभव में श्मशान ही ऐसी जगह है, जहाँ व्यक्ति पूरी तरह से अपने रंग में, अपने शबाव पर होता है। यहाँ वह जितना खुला हुआ होता है, उतना तो वह दो घूँट पीने के बाद भी नहीं खुलता।(पृ. 42)

अर्थी को उतारते ही अलग–अलग गुट बन गये। सरकारी और असरकारी कर्मचारियों का समूह अपने–अपने संस्थान और कार्यालय प्रमुख का रोना रोते हुए उनकी सात पुश्तो का नर्क में भेजने का पुरजोर प्रयत्न कर रहे हैं, उनमें से कुछ समझदार अपनी वेतनवृद्धि की संभावनाओं पर विचारविमर्श में लीन थे, जबकि अन्य अपनी एक सी.एल. का मातम मनाने में।(पृ. 43)

'अतिक्रमण हटाओ' व्यंग्य में अनेक प्रकार के अतिक्रमणों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जमीनी अतिक्रमण के अलावा शारीरिक और आर्थिक अतिक्रमणों की चर्चा भी मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत हुई है। मनोरंजन के साथ–साथ विसंगतियों पर व्यंग्य का हथौड़ा भी चलता दिखाई देता है, यथा–अतिक्रमण आर्थिक भी होता है। विश्व का सबसे बड़ा चौधरी जब जिसपर जी चाहे के अंदाज में आर्थिक प्रतिबंध लगाकर उसकी अर्थव्यवस्था में उंगली डाल देता है। बढ़ती हुई मँहगाई निम्न और मध्यम वर्ग के परिवारों की नियमित व्यवस्था में अतिक्रमण कर उसकी मासिक योजना पर झाड़ू फेर देती है।(पृ. 51)

व्यंग्यकार महेन्द्र जी अपने व्यंग्यों में चौतरफा मार करते हुए चलते हैं। एक विषय पर चर्चा करते हुए अन्य अनेक आनुषंगिक विषयों को भी व्यंग्य की लपेट में ले लेते हैं। यह सिद्ध व्यंग्यकार का लक्षण है। इसके व्यंग्य पाठकों की चेतना को झकझोर देते हैं। उन्हें सोचने पर मजबूर कर देते हैं और उन्हें जागरुक बनाकर ही छोड़ते हैं।

संग्रह में एक व्यंग्य है 'न्याय माँगते चलो।' इस व्यंग्य में न्यायालय का जीवंत चित्रण है। न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, वकीलों की कारस्तानियाँ, बाबुओ की धनलोलुपता और इन सभी के मध्य पिसता हुआ मुवक्किल, सभी का यथार्थ चित्रण पाठकों के अंतर्मन को झकझोर देता है। तारीख पर तारीख, तारीख पर तारीख, तारीख पर तारीख, फैसला इतनी आसानी से कभी होना होता है। (पृ. 58) 'सुबह–सुबह खाली पेट', 'विज्ञापनों का ज्ञापन', 'नई चप्पलें', 'गाय हमारी माता है', 'यूजन और कन्यूजन' और 'गणपति बप्पा मोरिया' इस व्यंग्य संग्रह की महत्वपूर्ण व्यंग्य रचनाएँ हैं। इनमें लेखक ने सरकारी कार्यालयों से लेकर, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त अनैतिकताओं को अपना निशाना बनाया है। इनमें कहीं व्यंग्य का चुटीलापन है तो कहीं व्यंग्य की तेज आक्रामकता भी मौजूद है। गणपति बप्पा मोरिया में महेन्द्रजी रूढ़ियों, दिखावा, अपव्यय और पश्चिमीकरण पर व्यंग्य की लाठी बरसाते हुए चलते हैं। स्त्री के प्रति पुरुष मानसिकता को कितने सरल किन्तु असरकारी ढंग से प्रस्तुत कर दिया है–स्त्री तो स्त्री होती है! क्या ग्रामीण और क्या शहरी? उसका स्त्रीमात्र होना ही पुरुष जगत के लिए संतोष और आनंद का विषय होता है।(पृ. 102)

नई चप्पलें व्यंग्य रचना में राजनीतिज्ञों पर करारे व्यंग्य हुए हैं। राजनीतिज्ञों के जूतों और चप्पलों के किस्से यदा–कदा अखबारों में सुर्खियों बटोरने लगते हैं। कभी उनके मातहत उन्हें जूते, चप्पल पहनाते हुए दिख जाते हैं और कुछ समय पश्चात् उन्हें राजनीति में उच्च पद प्राप्त हो जाते हैं। यह चमत्मकार है, राजनीतिज्ञों के जूते–चप्पलों का। मध्यक्षेत्र की वैभवशाली महिमामयी मंत्राणी के चरण कमलों में सुशोभित चप्पलें जब नगरभ्रमण के दौरान उन्हें धोखा दे गई तो बीस लोग कारवाँ छोड़कर उनको नई चप्पलें पहनाने के लिए।(पृ. 80)

संग्रह के सभी व्यंग्य पठनीय हैं, क्योंकि इनमें किस्सागोई का गुण विद्यमान है। किस्सागोई पाठकों को साथ लेकर चलती है। पाठक साथ–साथ चलता है और कहीं–कहीं संवेदित होकर सोचने लगता है। जो व्यंग्य लोगों को सोचने पर मजबूर कर दे तो समझो वह सफल व्यंग्यकार है। महेन्द्रजी के व्यंग्य कदाचारों, सांस्कृतिक विरूपताओं, अत्याचारों, अनाचारों और दुरंगेपन पर पैनी नजर रखकर कभी हास–परिहास द्वारा और कभी उनपर भारी चोट करके उन्हें आहत करते हैं, ताकि लोग ऐसी गंदी मानसिकता का त्याग कर दें। व्यंग्यकार को व्यंग्य की शास्त्रीयता का अच्छा ज्ञान है। तभी उनके व्यंग्य कारगर हथियार साबित हुए हैं। इसके लिए जैसी भाषा होनी चाहिए, वैसी उनके पास है। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग से व्यंग्य की ताकत और अधिक बढ़ गयी है। भाषा पांडित्य के लबादे से दूर साधारण जन के बहुत करीब है, इसलिए ये व्यंग्य पाठकों को सीधे प्रभावित करते हैं।

कविता

चिड़ियों का जीवन

ज्योति सिन्हा
बेकार बाँध, धनबाद
मो.–09102899404

चिड़ियों को सुकून है कि
वह मनुष्य की तरह नहीं मरता
दूसरे का विद्रोह नहीं सहता
उसे तो पेड़ों की
डालियाँ जिसपर घने
पत्ते हैं
घोंसला चाहिए
वह तो अपने
अंडों की हिफाजत चाहता है
हमला न कर सके
आँधी पानी
गिराकर उसे नष्ट न करे
चिड़ियों को
ईर्ष्या–द्वेष से मतलब नहीं है
उसे तो सुकून भरा
घोंसला चाहिए
खेतों में चुगने के लिए
दाना चाहिए।

2. औरत

औरत लिख रही है
कविता
आभासी दुनिया में
धड़ल्ले से
अनेक पत्रिकाओं में
सहेज रही अपनी
कविता
साहित्यिक गलियारों में
पुरुषों को मात कर रही है
चला रही है
कलम धड़ल्ले से
पुरुस्कार और नाम यश पाकर
सम्मानित हो रही है
औरत
चाहे वो गृहिणी हो या
नौकरी पेशा
कभी–कभी उसकी
कविता
लाउड के रूप में उभरती है
वह बिंदास होकर
लिखती है
कविता
धड़ल्ले से
यूँ ही
औरत
खुद कविता बनकर
जी लेती है
अपनी गृहस्ती में।

कहानी :

राज अपना है अब

नसीम साकेती
आदिल नगर एकक्लेब,
कल्याणपुर (पश्चिम), लखनऊ
मो0 09415458582

नगर में कल मंत्री महोदय का आगमन है, एक उद्घाटन के सिलसिले में। उद्घाटन किसी स्कूल, अस्पताल अथवा औद्योगिक केन्द्र का नहीं, बल्कि नगर के नवनिर्मित आलीशान एयर कंडीशन सरकारी सिनेमाघरों का है, जिसके लिए मुख्यालय से लगातार तार द्वारा सूचनाएँ आ रही हैं, फिर भी मुख इंजीनियर महोदय शायद इत्मीनान नहीं हो रहा है, इसीलिए तो अपने निजी सहायक को एक लंबे चौड़े पत्र के साथ भेजकर इस बात की गारंटी चाही है कि सब कुछ उनकी आशाओं के साथ भी दो हाथ आगे हो। किसी भी कोण से कमी न रह जाय... वह स्वयं मंत्रीजी की छाया बनकर आयेंगे, इसलिए पहले से कुछ भी देख पाना उनके लिए संभव नहीं है और मंत्री जी को अगर कोई चीज अच्छी न लगे तो समझो, उनके लिए कयामत ने उनकी दहलीज पर कदम रख दिया है, वह अपनी नौकरी को ओस की बूँद समझते हैं, जिसे मंत्रीजी की लाल–लाल आँखों की गर्म नजर मात्र शंकर के तीसरे नेत्र की तरह भस्म कर सकती है।

आगे पत्र में लिखा है–सिनेमाघरों का काम वह स्वयं देखें, बाकी और इंतजाम उसके साथी शर्माजी करेंगे, जो इस प्रकार के इंतजाम के लिए अपना सानी नहीं रखते हैं।

उसी पत्र का कमाल था कि आज वह घर से बिना नाश्ता किये ही काम पर पहुँच गया था। एक–एक चीज को नजदीक से देखकर उसे ठीक करने में मशगूल था, दरवाजे पर पड़ी सफेदी को बोरे के टुकड़े से रगड़कर साफ किया जा रहा था कि कहीं एक दाग भी मंत्रीजी को नजर न आने पाये, वर्ना उसकी बेदाग की चादर दागदार हो सकती है।

दरवाजे की रंगाई करने में अजीम पेंटर से रंग की दो–चार बूँदें दीवार पर गिर गयी, तो जैसे साँप सूँघ गया हो, वह एकदम उखड़ गया, हालाँकि उसके स्वभाव से उखड़ना मेल नहीं खाता था, लेकिन आज उसके मस्तिष्क के शिराओं में जाने क्या चीज उमड़–घुमड़ रही थी, उसने अपनी बेमेल गरज की आवाज में कहा–'किस बेवकूफ ने तुम्हें पेंटर बना दिया?काम क्या करते हो कि बना–बनाया काम बिगाड़ते जा रहे हो, पेंटर से खलासी बनना चाहते हो क्या?अजीम एकदम सहम गया और सीढ़ी के डंडों से जल्दी–जल्दी उतरकर दीवार पर पड़े छींटों को साफ करने लगा, उसका मान अंदर ही अंदर उबाल खा रहा था–साहब क्या कर रहे हैं आज?फिर उसकी आवाज हवा में गूँजती आ गिरी–'आज दोपहर में कोई छुट्टी नहीं करेगा और नत्थू को हिदायत करने लगा कि वह घर जाकर उसका खाना भी यहीं ले आये, आज वह घर नहीं जाएगा।

शाम तक खड़े–खड़े वह एकदम टूट गया, अब उसके पैर जवाब देने लगे थे, पैरों की झनझनाहट के साथ–साथ कभी कभी उसका पूरा शरीर झनझना उठता था और दिमाग तो जैसे फटा जा रहा था। अब उसे खड़ा होना काटे खा रहा था। उसने थोड़ा किनारे हटकर अपनी पिंडलियों को दोनों हाथों के पंजों से सहलाना शुरू किया और पागलों की तरह अपने सिर को झिंझोड़ने लगा, एकाएक उसे ख्याल आया कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है और उसका हाथ बिजली के एक झटके की तरह रुक गया। एक बार फिर चारों ओर घुमकर उसने सिनेमाघर का जायजा लिया और इत्मीनान की साँस लेकर घर की सड़क नापने लगा।

घर में घुसा ही था कि पत्नी भूखी शेरनी की तरह उसपर टूट पड़ी–रात का भी खाना वहीं मँगा लेते, आने की क्या जरूरत थी?जैसे यही एक नौकरी करते हैं?उसने मरी हुई आवाज में बस इतना ही कहा–कल सिनेमाघर का उद्घाटन है, मंत्रीजी आ रहे हैं। 'आपके तो मंत्री–संत्री और अफसर आते रहते हैं, आज कोई नवाई है, लेकिन यहाँ घर पर भी तो कॉलोनी की औरतें आती हैं, कभी सोचा आपने कि घर में कुछ है या नहीं, आज ही वर्माजी के बच्चे आये थे, घर में एक दान चीनी नहीं थी, तो साधु चपरासी के यहाँ से मँगाकर आपकी इज्जत पर परदा डाला है। और अंत में गुस्से का असली कारण उगल दिया–आपको तो याद नहीं होगा, आज मेरे भैया–भाभी आनेवाले हैं और घर में चीनी, घी तथा तेल देखने को भी नहीं है, आखिर मैं क्या करूँगी।

उसने काँपती नजरों से देखा कि नारी ने अपना अमोघ अस्त्र इस्तेमाल कर दिया था, जिसके आगे बड़े से बड़ा व्यक्तित्व अपना हथियार डाल देता है। उसकी पत्नी की आँखों की कोरों में मोती उतर आये थे। वह अपनी थकान को एकदम भूल सा गया, अभी कुछ देर पहले का उसके शरीर का टूटना काफूर हो गया। उसने सामने खूँटी की ओर हाथ बढ़ाया और अन्यमनस्क भाव से अपनी पत्नी की ओर देखा, जैसे कह रहा हो, मुझे कुछ कहना नहीं है, मैं हार गया हूँ और पूछा–'क्या–क्या लाना है?'

एक लंबी–चौड़ी फेहरिस्त उसके सामने किसी दानव की जीभ की तरह लहरा गई। शैतान की अंतहीन आँत लगने वाली मँहगाई जैसी फेहरिस्त को उसने तोड़–मरोड़कर जेब के हवाले किया और घर से बाहर निकलकर बाजार की ओर आ गया, जेब में हाथ डाला, थोड़े से पुराने नोट उँगलियों से टकराकर खामोश हो गये। उसे अपने साथी शर्माजी की याद आ गई, जिनकी जेबें ठेकेदार के दिये कमीशन से हरदम फूली रहती हैं, लेकिन आज वह जाने क्यों इसपर कुछ भी नहीं सोचना चाहता था, हालाँकि पहले जब शर्माजी का चेहरा उसके सामने कौंधता था तो वह घंटों अच्छे–बुरे ख्यालों में डूबा रहता था। रातभर करवटें बदल–बदलकर अपनी नींदों को बरबादी की भट्टी में झोंक देता था। सुबह जब उठता था, तब उसे लगता, जैसे उसके शरीर का रक्त किसी ने चूस लिया है, लेकिन फिर वह थोड़ी देर बाद अपने असली रूप में आ जाता और एक आम आदमी का चेहरा अपने ऊपर चिपका लिया करता, लेकिन आज उसे ऐसा कुछ भी नहीं लग रहा था।

कई दुकानों की खाक छानने के बाद वह सेठ चंदनलाल की दुकान के सामने जाकर ठिठक गया और एक किलो चीनी के लिए सेठजी से बोला ही था कि सेठजी ने मुस्कुराकर कहा–साहब! आप भी मजाक करेंगे?

वह सोचने लगा, उसके मुँह से कोई गलत बात निकल गई क्या?और बड़ी संजीदगी से बोला–क्या बात है सेठजी?

आप एक किलो की बात करते हैं और यहाँ एक दाना भी नहीं है। वह सोच ही रहा था कि अभी कुछ दिन पहले तो चालीस रुपये में शक्कर इफरात से मिलती थी, उसके पीछे से किसी ने डालडा और घी का रेट पूछा, जिसे सुनकर वह एकदम सन्न हो गया, अपनी जेब में पड़ी मरियल नोटों की कुड़कुड़ाहट का उसे एहसास हो आया, उसकी हिम्मत के अंदर घुन–सा लगने लगा, अब तेल और घी के बारे में पूछने के लिए उसे शब्द तलाश करने में कठिनाई हो रही थी, इस डर से कि सेठजी कहीं पूछ न लें कि और क्या चाहिए। साहब! उसने पहले ही वहाँ से गदहे के सिर से सींग की तरह गायब होने में अपनी भलाई समझा।

अब वह सड़क के दूसरे छोर पर था। एक ट्रक शक्कर के बोरों से लदा हुआ, उसकी आँखों के सामने फर्र से निकल गया और नेता सेठ की दुकान पर खड़ा हो गया। एक रिक्शे पर दो बोरा शक्कर लादे हुए शंकर हलवाई सामने से आ रहा था। उसका मस्तिष्क कुछ सोचने के लिए मजबूर हो गया। वह सोच की दहलीज पर कदम रख ही रहा था कि उसके ऑफिस के कैशियर महोदय ने उसे सलाम करके सड़क के किनारे खड़े होने का अर्थ जानना चाहा। शक्कर के बारे में सोचते–सोचते उसके मुँह से अनायास ही निकल गया–शक्कर।

'लाइये अभी लाता हूँ।'

नहीं मिलेगी भाई, मैं कई दुकानें देख चुका हूँ।

क्यों?पचास रुपये किलो नेता सेठ के यहाँ चाहे जितना ले लीजिए।

उसकी बातों ने जैसे उसकी खोयी हुई स्मरणशक्ति को वापस ला दिया हो, उसे शक्कर से लदे उस ट्रक की याद आ गयी, जो अभी–अभी कुछ पहले नेता सेठ की दुकान की ओर गया था और वह फिर एक बार गंभीर हो गया। उसकी सोच के बेलगाम घोड़े हवा से बातें करने लगे। बाजार में सब कुछ है, लेकिन तहखानों में कैद रहता है, अगर सरकार दृढ़ इच्छा शक्ति से ईमानदारी से सारे देश में छापा मारे तो तहखानों में कैद सारी चीजों को आजाद कर दे, तो मँहगाई का नामोनिशान मिट जाएगा। थोड़ी देर तक गंभीरता का लबादा ओढ़े सामनेवाली पान की दुकान की ओर देखता रहा, जहाँ शर्माजी का लड़का एक महँगी सिगरेट लेकर पी रहा था, उसकी बगल में एक रिक्शे पर डालडा तथा तेल का बड़ावाला टीन और बोरी में कुछ भरा रखा था। लड़के ने एक जोरदार कश लिया और रिक्शे पर आकर बैठ गया। सामने बड़े बाबू का लड़का दीख पड़ा तो शर्माजी के लड़के ने उसे पुकारकर कहा–विनोद, घर चल रहे हो?आओ चलें। विनोद तेजी से उछलकर रिक्शे पर बैठ गया और दोनों पैरों को बोरी पर जमा दिया। शर्माजी के लड़के ने पैरों को अपने हाथों से उठाते खिसकाते हुए कहा–अरे यार! शक्कर पर पैर न रखो, विनोद जल्दी से उछलकर कुछ उठ–सा गया।

अब उसका दिमाग सोच की रफ्तार में हवाओं के भी कान काट रहा था, उसके बगल से एक सफेद कार धीमे से सरक गई, जिसमें बैठी हुई एक अधेड़ महिला ने कृत्रिम प्रसाधन की वस्तुओं से पुते चेहरे से उड़ी एक मनमोहक खुशबू हवा में तैर गई, वह थोड़ा–सा पीछे हट गया।

बगल के एक रिक्शा पर बैठी एक खूबसूरत युवती चिल्ला रही थी, जिसे दो औरतें अगल–बगल में पकड़े बैठी थी, उनकी वेशभूषा से लगता था कि वे गरीबी की रेखा के नीचे साँस लेनेवाली आत्माएँ हैं।

पसीने से लथपथ हाथ ठेला खींचते हुए उधर से जोखन काका आते दिखाई दिये, ठेला रोका, परेशानी से उभरे पसीने को हाथ की उंगलियों से पोंछते हुए बोले–अब किसी गरीब की इज्जत नहीं बचेगी।

क्या हुआ काका?सब्जीवाले ने पूछा।

देखा नहीं, पीली कोठीवालों के लड़कों ने मुँहना की जवान लड़की की क्या दुरगत कर डाली है। वह बेचारी शौच करने गयी थी और उन सालों ने उसके साथ...। डाक्टरी के लिए अस्पताल जा रही है। काका अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि चौराहे पर गोली चलने की आवाज सुनाई पड़ी, भगदड़ मच गयी, समाने बिजली के खंभे स्थानीय विधायक का खून से लथपथ शरीर जिंदगी की भीख माँग रहा था। कातिलों ने मोटर साइकिल को स्टार्ट किया और सूरज की रोशनी में नौ दो ग्यारह हो गये। उसकी आँखों के सामने कल की ट्रेन–डकैती और उसके बगलवाले घर में पड़े डाके का मंजर नाच गया। उसके घने विचार जैसे अब फूट पड़ना ही चाहते हैं, जब दिन दहाड़े एक विधायक का यह हश्र है तो आम आदमी की क्या बिसात?और उसकी नजरें जिंदगी और मौत से जूझते विधायक जी के ऊपर से हटकर बिजली के खंभे पर टँगे उस बड़े बोर्ड पर अटक गई जिसपर उसका चिर–परिचित प्रिय आशाओं की प्रज्वलित दीपशिखा का नारा–'राज अपना है अब' नजर आया, लेकिन आज उसमें फर्क लग रहा था, क्योंकि आजादी की पहली सुबह की पहली आजाद किरण की रोशनी में उसने उसे दूर से भी पढ़ा था तो उसके अक्षर बड़े बड़े नजर आये थे, लेकिन आज वही अक्षर उसे एकदम नजदीक से भी पढ़ने में नहीं आ रहे थे।

कविता

मुझको ढूँढ रहा है

प्रियंवदा

फिर मिल गया अचानक वो मुझे
बालों की उलझी हुई गुथों में, बेतहाशा उलझा हुआ सा
मचला कुचला कसमसाता, किसी बेजान पत्ते सा
बड़े दिन हो भी गए थे, उसे करीने से सँवारे
उसकी आँखों में खुद को जी भरकर निहारे
कदाचित वो घर के उस भंडार घर में रखे
किसी आउटडेटेड सामान की तरह
जहाँ जरूरत गैर जरूरत की
नयी पुरानी कितनी ही वस्तुएँ
रख दी जाती हैं अक्स ही
बड़े ही जतन से सहेजकर
वक्त के गर्द हो या फिर
उपेक्षाओं का असहनीय दर्द
सब कुछ सहते हुए भी,
जो बरसों बरस यूँ ही
खामोश पड़ा रहता है
दिल को ढाढ़स बँधाये
एक उपकार को आस लगाये
कई बार ऐसा भी होता है यहाँ
वक्त साथ बदल गये
जिंदगी के नये से हो गए बाजार में
लाख ढूँढ़ने पर भी वह नहीं मिलता
आउटडेटड हो गये किसी बेहद प्रिय सामान के
जरूरी कलपूर्जे की तरह
लौटा देता हूँ खुद कटकर वह उपेक्षित
अनायास ही चेहने पर, एक चटकीली मुस्कान
महीनों थपथपाता रहता है मन
फेर अपनी उष्ण हथेली
उसकी गैर नहाई गर्दीली, पीठ को साभिमान
घंटों सुलझाती रही अलकें
उससे चार होने को पलकें
सावन के सूखे की मार सह
खुदरा आई उँगलियों की
संवेदनाओं नमी हुई पोरें
समय की लगाई, उलझाई खोलते कठिन गाँठें
हर उलझन का खोल
हथेली पर प्यार से उसे रख, रह रहकर सहलाते
विवशताओं की कितनी ही घातें
किन्तु कलेजा काटकर मुस्कान परोसनेवाला
अर्धमूर्च्छित सा वह
सुन भी पाया होगा, दो शब्द भी वह क्या खाक
अपनी जड़ हुई फटी फटी
आँखों से एकटक बस मुझे ही रहा था ताक
आज जैसे वह अपनी श्वासों को नाम रहा था
मुझमें बचे खुचे से अपने अस्तित्व को आँक रहा था
यूँ कैसे भला उसे अलविदा कह सकती हूँ
सच कहती हूँ फिर
पतझड़ उगते हुए मौसम में हर बंधन को चुगते
अचानक ही एक दीवार जोर से भरभराई
जाने किधर से अपना तट छोड़ एक नदी
बेतहाशा उफनाई
आईने के ऊपर चढ़ी मोटी धूल
बहा ले गई जो अपने साथ
बैठ गया झट उठकर वो भी
फिर से थामकर मेरा हाथ
काजल की फैली कोरों पर
कबसे वो जाने क्या क्या फूँक रहा है
कभी मुझमें वो आईना
तो कभी आईने में मुझे अब ढूँढ रहा है।
एक टूटे हुए सपने का दर्द
भोर की किरण के साथ ही
उसका बेपरवाह पलकों से
एकाएक फिसल क्या जाना
जैसे किसी मासूम बच्चे की
भीड़ के रेले झमेले में एकाएक
अपनों की ऊँगली छूट जाना
भय मिश्रित सिहरन को ढोकर
बिस्तर की हर सिलवटों कसे होकर
बदहवास तन मन के हर छोर पर
छोड़ता बेचैनी और छटपटाहट
असफल कोशिशें और हड़बड़ाहट।

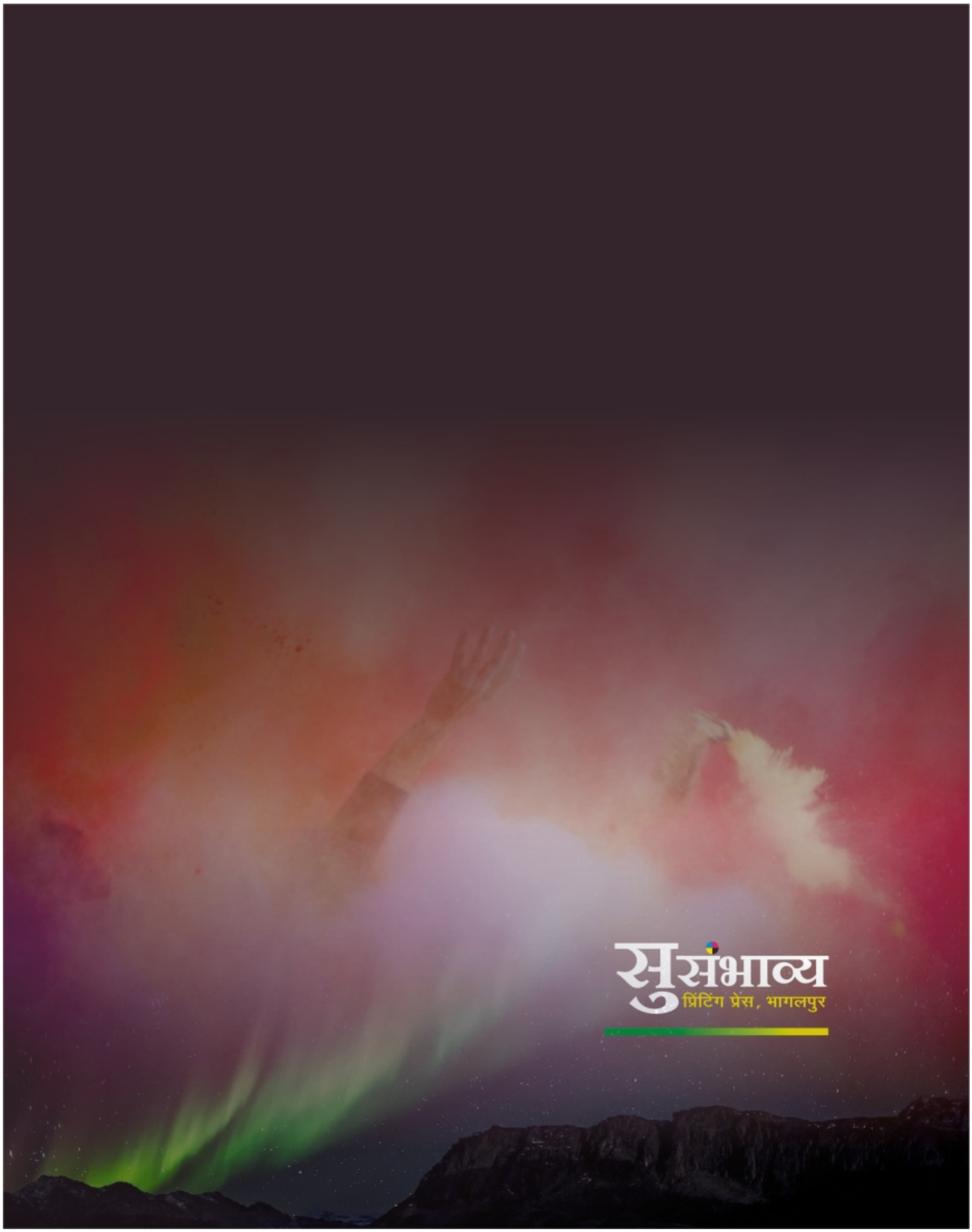
सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर